स्वर्ण किरण

श्री सुमित्रानंदन पंत

श्री सुमित्रानन्दन पंत

डाक्टर एन. सी. जोशी, एफ. ए. सी. एस.

डाक्टर साहब, मुझे आपने दिया पुन नव जीवन ,
गीत गा सकूँ फिर, विधि का था उसमे गूढ प्रयोजन !
विश्रुत सर्जन आप, एक्स रे से कर रोग निरूपण ,
इफ्रा रेड, अल्ट्रा वायलेट से भरते नव संजीवन !
जीवन सिद्ध, रहस्य किरण का नही आप से गोपन ,
चिर उपकृत, मै स्वर्ण किरण करता हूँ स्नेह समर्पण !
मधुर स्नेह के स्वर्ण हास्य से भरे आप का यह मन ,
स्वर्ण किरण अतर की आभा अतर मे कर वितरण !

विज्ञापन

अपनी दीर्घ अस्वस्थता के बाद स्नेही पाठकों का स्वर्ण किरणों से अभिनंदन करने में मुझे हर्ष हो रहा है। उनके वातायनों में यदि स्वर्ण विरण मवेश पा मकी तो मैं अपना श्रम सफल समझूँगा।

सीता
मद्रास, १० मार्च, १९४७

श्री सुमित्रानंदन पंत

सूची

अभिवादन

हँसी, लौ, स्वर्ण किरण,
शिखर आलोक वरण!
विचरती स्वर्ण किरण
धरा पर ज्योति चरण!

जगे तरु नीड़ सकल
खगों की भीड़ विकल,
पवन में गीत नवल
गगन में पंख चपल!
अधखिले स्वप्न नयन
चूमती स्वर्ण किरण!

सरों में हँसी लहर
ज्योति का जगा प्रहर,
चेतना उठी सिहर
स्पर्श यह दिव्य अमर!
तुहिन के स्वर्णिम क्षण
वितरती स्वर्ण किरण!

स्वर्ण किरण

विजय से दीप्त गगन
ध्वजा सी उड़ती पवन,
धरा रज नव चेतन
खिला मन का लोचन !
युगो का तमस हरण
करे यह स्वर्ण किरण !

खुला अब ज्योति द्वार
उठा नव प्रीति ज्वार,
सृजन शोभा अपार ।
कौन करता ऽभिसार
धरा पर ज्योति भरण,
हँसी, लो, स्वर्ण किरण !

सम्मोहन

जादू बिछा दिया इस भू पर ।
तुमने सोने की किरणो की
जीवन हरियाली बो बो कर ।

फूलो से उड फूल, रँगो से
निखर सूक्ष्म रँग उर के भीतर
बुनते स्वप्न मधुर सम्मोहन,
स्वर्ण रुधिर से अतर थर् थर् ।

स्पदित हृदय आज कण कण मे,
भाषा बनी द्रुमो की मर्मर,
लहरे उर पर देती आँचल,
कमल मुखो से जीवित से सर ।

प्रणय दृष्टि दे दी नयनो को,
प्राणो मे सगीत दिया भर,
स्वर्ण कामना का घूँघट नव
डाल धरा के मुख पर सुदर ।

निज जीवन का कटु सघर्षण
भूल गया यह मानव अतर
जग जीवन के नव स्वप्नो की
ज्योति वृष्टि मे स्नान कर अमर ।

स्वर्ण ज्वाल मे तुमने जीवन
दिया लपेट, हृदय मे हँस कर,

मर्म प्रीति का झरता अविरत
इन प्राणों मे स्वर्णिम निर्झर !
स्वर्ग धरा को बाँध पाश में
स्वर्ण चेतना के चिर सुखकर
स्वप्नों को तुमने जीवन की
देही देदी, मर्त्य शोक हर !

श्रात इद्रियाँ अनुप्राणित हो
देवो का करती आवाहन,
अंतर्नभ के दुग्धामृत से
भरे पुन वे इन मे जीवन !

दीप शिखा सी जगे चेतना
मिट्टी के दीपक से उठकर,
तैल धारवत् मर्म स्नेह पा
स्वर्ग विभा से दे भूतल भर !
अतरतम की नीरवता मे
जाग्रत हो सुर मादन गुजन,
खडित भव विशृखलता को
बाँध अमर गति लय मे चेतन !

फिर श्रद्धा विश्वास प्रेम से
मानव अतर हो अत स्मित,
सयम तप की सुदरता से
जग जीवन शतदल दिक् प्रहसित !
व्यक्ति विश्व मे व्यापक समता
हो जन के भीतर से स्थापित,
मानव के देवत्व से ग्रथित
जन समाज जीवन हो निर्मित !

करे आत्म निर्माण लोकगण
आत्मोज्वल भू मगल के हित,

वहिरतर जड चेतन वैभव
सस्कृति मे कर निखिल समन्वित !
सहृदयता का सागर हो मन
हृदय शिला हो प्रेरणा सरित ,
भू जीवन के प्रति रुचि जन मे
मानव के प्रति मानव प्रेरित !

प्राणो के स्तर स्तर मे पुलकित
अमर भावनाएँ हो विकसित ,
प्रीति पाश मे बँध सुदरता
काम भीति से हो अकलकित !
देव वृत्तियो के सगम मे
डूबे चिर विरोध सघर्षण ,
जीवन के सगीत मे अमित
परिणत हो धरती का क्रदन !

ऊर्ध्वग शृगो के समीर को
आओ, साँसो से उर मे भर
चिर पवित्रता से हम तन का
मन का पोषण करे निरतर !
मुक्त चेतना के प्लावन सा
उमड रहा रजतातप निर्भर ,
आज सत्य की बेला बहती
स्वप्नो के पुलिनो के ऊपर !

हिमाद्रि

मानदड भू के अखंड हे,
पुण्य धरा के स्वर्गारोहण,
प्रिय हिमाद्रि, तुमको हिमकण से
घेरे मेरे जीवन के क्षण!
मुझ अचलवासी को तुमने
शैशव मे आशी दी पावन,
नभ मे नयनो को खो, तब से
स्वप्नों का अभिलाषी जीवन।

कब से शब्दों के शिखरो मे
तुम्हे चाहता करना चित्रित
शुभ्र शांति मे समाधिस्थ हे
शाश्वत सुंदरता के भूभृत्!
वाल्य चेतना मेरी तुममे
जडीभूत आनद तरंगित,
तुम्हे देख सौन्दर्य साधना
मेरी महाश्चर्य से विस्मित!

जिन शिखरो को स्वर्ण किरण नित
ज्योति मुकुट से करती मडित,
जिन पर सहसा स्खलित तड़ित
हो उठती निज आलोक से चकित!
जिन शिखरो पर रजत पूर्णिमा
सिन्धु ज्वार सी लगती स्तंभित,

जिनकी नीरवता में मेरे
गीत स्वप्न रहते थे झंकृत !

जिनकी शीतल ज्वाला मे जल
बनी चेतना मेरी निर्मल,
प्राण हुए आलोकित जिनके
स्वर्गोन्नत सौन्दर्य से सजल ।
हृदय चाहता काव्य कल्पना को
किरीट पहनाना उज्वल
स्मृति मे ज्योति तरगित स्वर्गिक
शृगो के आलोक का तरल !

वसुधा की महदाकांक्षा से
स्वर्ग क्षितिज से भी उठ ऊपर
अतर आलोकित से स्थित तुम
अमरो का उल्लास पान कर !
उरोभार से तरुण धरणि के
सोया स्वर्ग शीष धर जिसपर,
तुम भारत के शाश्वत गौरव
प्रहरी से जागरित निरतर !

रवि की किरणे जिसे स्पर्श कर
हो उठती आलोक निनादित,
जिस पर ऊषा संध्या की छबि
आदि सृष्टि सी ही स्वर्णांकित !

इन्दु स्फीत तुम स्फटिक धवलिमा
के क्षीरोदधि से हिल्लोलित
ज्योत्स्ना मे थे स्वप्न मौन
अप्सरा लोक से लगते मोहित !

नवल प्रवालो की रत्नश्री
अहरह रहती जहाँ मर्मरित,
देवदारु की चारु सूचियों से
प्रिय तलहटियाँ रोमाचित !
रंग रूप से रहित वहाँ तुम
चिर दिगत स्मिति से थे शोभित,
आदि तत्व से, अपनी ही शोभा
विलोक मानो अनिमेषित !

नीली छायाएं थी तन पर
लगती आभा की सी सिकुडन,
इंद्र किरण मंडल से दीपित
उड़ते थे शत हँसमुख हिमकण !
स्वर्दूतो के पंखो से घिर
तडित चकित हिम के रोमिल घन
रंगो से वेष्टित रखते थे
तुमको हे आलोक निरंजन !

प्रति वत्सर आती थी मधुऋतु
सद्य स्फुट देही ले कुसुमित

चीर रश्मियो को, फूलों के
अंगो मे निज कर शत रजित।
खुलती पखडियो की कचुक
सौरभ श्वासो से थी स्पंदित,
मेरे शैशव को नित उसकी
गीत कोकिला रखती कूजित !

कलरव, स्वप्नातप, सुरधनु पट,
शशि मुख, हिम स्मिति, गात्र ले श्वसित,
षड्ऋतु देती थी परिक्रमा
अप्सरियो सी सुरपति प्रेषित।
शरद चद्रिका हो जाती थी
स्वप्नो के शृगो पर विजडित,
हिम की परियो का अचल उड
जग को कर लेता था परिवृत।

रग रग के चित्रित पक्षी
उडते नभ मे गीत तरगित,
नील पीत भृगो का गुजन
मौन क्षणो को करता मुखरित।
ऊष्मा का सूर्यातप तुम मे
लगता शीतलता सा मूर्तित,
इन्द्रचाप पुल पर, वर्षा मे,
सुरबालाए आ जाती नित।

जग, प्रच्छाय गुहाओ मे ,
वाष्पों के गज भरते नव गर्जन ,
चचल विद्युत् लेखाए थी
लिपट दृगों से जाती तत्क्षण !
ताराओं के साथ सहज
शैशव स्वप्नो से भर जाता मन ,
उठते थे तुम अंतर मे
सौन्दर्य स्वप्न शृंगों पर मोहन !

मेघो की छाया के सँग सँग
हरित घाटियाँ चलती प्रतिक्षण ,
वन के भीतर चित्र तितलियो का
उड़ता फूलों का सा वन !
रँग रँग के उपलो पर रणमण
उच्छल उत्स करते कल गायन ,
झरनों के स्वर जम से जाते
रजत हिमानी सूत्रो मे घन !

भीम विशाल शिलाओं का
वह मौन हृदय में अब तक अकित ,
फेनों के जल स्तभों से वे
निर्झर रभस वेग से मुखरित !
चीड़ो के तरु वन का तम
साँसें भरता मन में आंदोलित ,

दरियो की गहरी छायाए
ज्योतिरिगणो से थी गुफित !
गाते उर मे क्षिप्र स्रोत ,
लहराते सर तुषार के निर्मल ,
सौरभ की गुजित अलको से
छू समीर, उर करता शीतल !
नीली पीली हरी लाल
चपलाओ का नभ जगता चचल ,
रजत कुहासे मे, क्षण मे ,
माया प्रातर हो जाता ओझल !

सभव, पुरा तुम्हारी द्रोणी
किन्नर मिथुनों से हों कूजित ,
छाया निभृत गुहाएँ उन्मद
रति की सौरभ से समुच्छ्वसित !
औषधियाँ जल जल दरियों के
स्वप्न कक्ष करती हों दीपित ,
ओसों के वन मे मिलते हो
स्तन हारो के मुक्ताफल स्मित !

मदन दहन की भस्म अनिल मे
उड़, अब तक तन करती पुलकित ,
सती अपर्णा के तप से
वन श्री अवाक् सी लगती विस्मित !

अब भी ऊषा वहाँ दीखती
वधू उमा के मुख सी लज्जित,
बढ़ती चद्र कला भी गिरिजा सी
ही गिरि के क्रोड़ मे उदित !

अब भी वही वसत विचरता
पुष्प शरो से भर दिगत स्मित,
गधोद्दाम धरा वह ही, पाषाण
शिलाएं पुलक पल्लवित !
अब भी प्रिय गौरा का शैशव
वर्णन करते खग पिक मुखरित,
देवदारु के पुण्य शिखर
वैसे ही शकर से समाधि स्थित !

अभी उतरता कूर्म सानु पर
वप्र क्रीडा परिणत गज घन,
वातायन से मद स्तनित कर
देता कवि सदेश आर्द्र स्वन !
अब भी अलके उठा देखती
ग्राम वधू उसको सरल नयन,
शुभ्र बलाको के दल नभ मे
कल ध्वनि भर करते अभिवादन !

× × × ×

आज जीवनोदधि के तट पर
खडा अवाछित, क्षुब्ध, उपेक्षित,

देख रहा मैं क्षुद्र अहम् की
शिखर लहरियो का रण कुत्सित !
सोच रहा, किसके गौरव से
मेरा यह अतर् जग निर्मित,
लगता तब, हे प्रिय हिमाद्रि,
तुम मेरे शिक्षक रहे अपरिचित !

और, पूछता मै मन से, क्या
यह धरती रह सकती जीवित
जो तुम स्वर्गिक गरिमा भू पर
बरसाते रहते न अपरिमित !
शिखर शिखर ऊपर उठ तुमने
मानव आत्मा कर दी ज्योतित,
हे असीम आत्मानुभूति मे
लीन ज्योति शृगो के भूभृत् !

घनीभूत अध्यात्म तत्त्व से,
जिससे ज्योति सरित शत नि सृत
प्राणो की हरियाली से स्मित,
पृथ्वी तुमसे महिमा मडित !
सग सौध से चिर शोभा के
नाग दत शृगो से कल्पित,
स्वर्ग खड तुम इस वसुधा पर,
पुण्य तीर्थ हे देव प्रतिष्ठित !

इन्द्रधनुष

(जीवन निर्माण)

स्वर्ग धरा के मध्य रश्मि वैभव से चित्रित
स्वप्नों के रत्नस्मित सम्मोहन से ज्योतित,
देखो, इन्द्रधनुष से विश्व क्षितिज आलिंगित,
विजय केतु सा वह प्रकाश का तम पर शोभित !

असतो मा सद् गमय,
तमसो मा ज्योतिर्गमय,
मृत्योर्माऽमृतं गमय !

आर्ष मंत्र के ज्योति तरंगित ये उदात्त स्वर
ध्वनित आज भी अतर्नभ मे दिव्य स्फुरण भर;
असत् तमस औ' मृत्यु सलिल मे हमे पार कर
सत्य, ज्योति, अमृतत्व धाम दो, जीवन ईश्वर !
अप्रकेत ज्यों सलिल आज लहराया दुस्तर,
ज्योति केतु फहराओ फिर से, मर्त्य हो अमर !

बाँधो हे, इस इन्द्रधनुष को धरती की वेणी पर
जीवन के तम की कबरी हो स्वर्ग विभा से भास्वर !
किरणों की सतरँग स्मिति से भू के रज कण हों रंजित,
अधकार हो पुन दिशाओ का प्रकाश में कुसुमित !
जब जब घिरते विश्व क्षितिज पर युग परिवर्तन के घन,
मेघों के क्षण रंध्रजाल से कोई शुभ्र किरण छन
ज्योति सेतु सी सर्जित हो द्रुत इन्द्रचाप मे मोहन,
स्वर्गिक स्वप्नों मे लिपटा लेती वसुधा के दिशि-क्षण !

गर्जन मथित नभ से बरस धरा पर शतमुख जीवन
प्राणों की हरियाली से रोमाचित करता जन-मन !

आज उदधि के नीलाचल मे बँधे निखिल देशान्तर ,
वायु वर्त्म से, पंख खोल, आने को नव्य युगातर !
आज तडित् के पद नूपुर मे ध्वनित विश्व सभाषण ,
लो, विद्युत् कटाक्ष से संभव अब दूरागत दर्शन !

आज वाष्प विद्युत् औ' विश्व किरण मानव के वाहन ,
भूत शक्ति का मूल स्रोत भी अणु ने किया समर्पण ;
मातृ प्रकृति ने सौप दिया मानव को विभव अपरिमित
हरित नील जब भी भविष्य मे कर लेगा वह सचित !
आज वनस्पति पशु जग को कर सकता मानव वर्धित ,
गर्भाशय मे जीवन अणु को ऊर्जित, विद्युत् गर्भित !
भूत रसायन प्राणि वनस्पति शास्त्र विविध अब विकसित ।
दिशा काल के परिणय का रे मानव आज पुरोहित !

आओ, सोचे द्विपद जीव कैसे बन सकता मानव ,
शक्ति-मत्त होकर भूदेव न बन जाए भू-दानव !
मानव सस्कृति का क्या स्वर्ग बसाएगा वह भू पर ,
भीषण अणु का भू प्रकप या छोडेगा प्रलयकर !
नव मनुष्यता होगी भू सगठित कि राष्ट्र विभाजित ,
अतर्देवों से प्रेरित या भूत दैत्य से शासित ?
धरा बनेगी शाति धाम या रक्त क्षेत्र रण जर्जर ,
अमृत व्योम से बरसेगा ? विष वह्नि विनाश भयकर ?

आओ, लोक समस्याओं पर मिल कर करें विवेचन ;
विश्व सभ्यता के मुख पर से हटा मृत्यु अवगुंठन !
सर्व प्रथम, जठराग्नि के लिए हवि दे श्रम की पावन,
शत पद हो, सहस्र कर, यंत्रों से कर संघोत्पादन !
नग्न क्षुधातुर जीवन्मृत भू के असंख्य शोषित-जन,
मानव तन को शोभाऽवृत कर नव युग करे पदार्पण !
आज यंत्र कौशल अर्जित, औ' विश्व योजना कल्पित,
जीव नियति मनुजो पशुओ की भी कृतार्थ हो निश्चित !
युग्म प्रीति के लिए प्राण आहुति फिर करे निरूपित
अजित पचशर के हित मोहक ज्योति व्यूह रच विस्तृत !
फूलों के वाणों से जीवन का मधु हो चिर सचित,
यौवन के शोभा तोरण मे युवति युवक विचरें स्मित !
शोभा का मुख काम लाज के पट से कर तमसावृत
उज्झित मानव देह मोह ओ' देह द्रोह से कवलित !!
स्वस्थ हृदय तारुण्य प्रणय को करे युग्म निज अर्पित,
भावी सतति को दे जीवन हव्य प्रीति का दीपित !
मातृ द्वार श्रद्धा प्रतीति के पुष्पों से हो पूजित,
प्राणो के स्वप्नो से जीवन की डाली हो मुकुलित !
सर्वाधिक रे जन शिक्षा का प्रश्न महत्, आवश्यक,
मानव के अतर्जीवन का गत इतिहास भयानक !
जनता के उर अंधकार की कथा करुण मर्मातक,
शिक्षा ही बहिरतर जनमगल की मात्र विधायक !
अर्ध जगत अवगुंठित, तमसावृत रे लोक असख्यक,
अर्ध सभ्य, लव विद्य शेष, जो जाति वर्ण के पोषक !

तर्को वादो सिद्धांतो से बुद्धिप्राण जन पीड़ित,
नीति रीति शाखा पथो मे धर्मप्राण अति सीमित;
द्रव्य मान पद के अर्जन मे रत स्त्री-प्रिय नव शिक्षित,
महामृत्यु के पूजन मे वैज्ञानिक, राज्य नियोजित !

शिलान्यास मानव शिक्षा का करना हमको नूतन,
आत्म ऐक्य औ' व्यक्ति मुक्ति का स्वर्ग सौध रच शोभन !
वाग् यंत्र से वाक् चित्र से वाहित कर सचित मन
जनगण मे भर सकते हम चेतना रुधिर का प्लावन !

ललित कलाओं से धरती का रूप बने मनुजोचित,
शोभा के स्रष्टा हो जन, जीवन के शिल्पी जीवित !
भावी स्वप्न दृगो मे, उर मे हो सौन्दर्य अपरिमित,
काव्य चित्र संगीत नृत्य से जन जीवन सुख स्पदित ।

हमे विश्व सस्कृति रे भू पर करनी आज प्रतिष्ठित,
मनुष्यत्व के नव द्रव्यो से मानव उर कर निर्मित;
मानवीय एकता जातिगत मन मे करनी स्थापित,
मन स्वर्ग की किरणो से मानव मुख श्री कर मडित ।

बहिर्चेतना जाग्रत जग मे, अतर्मानव निद्रित,
बाह्य परिस्थितियाँ जीवित, अतर्जीवन मूर्छित, मृत !
भौतिक वैभव औ' आत्मिक ऐश्वर्य नही सयोजित,
दर्शन औ' विज्ञान विश्व जीवन मे नहीं समन्वित !
खोई सी है मानवता, खोई वसुधा प्रतिबधित,
जाति पाँति है, रूढ़ि रीति है, देश प्रदेश विभाजित !

एकत्रित कर मन शक्ति चेतन मानव को निश्चय
ग्लानि पराभव मृत्यु अमङ्गल पर पानी शाश्वत जय !
भेद भाव, दुर्मति, असफलता युग गति मे हो मज्जित ,
जीवन के रथ चक्रों से अणु लोक-सृजन मे योजित !

ऊर्ध्व सचरण मे रे व्यक्ति, निखिल समाज का नायक ,
समदिग् गति मे सामाजिकता जनगण भाग्य विधायक,
ऊर्ध्व चेतना को चलना भू पर धर जीवन के पग ,
समदिक् मन को पख खोल चिद् नभ मे उठना व्यापक !
प्राणि शास्त्र को मानवीय बनना पीकर आत्माऽमृत ,
मन शास्त्र को ऊर्ध्व तथा नव भौतिक दिशि मे विस्तृत;
आदर्शो को रूढ़ि रीति पाशों से होना विरहित ,
सदाचार नैतिकता को नव युग आकृति मे विकसित !

अतर्जीवन के वैभव से आज अपरिचित भू-जन ,
मध्यम अधम वृत्तियो से कल्पित उनका भव जीवन;
सत्य-ज्योति से वचित भेदो से कुंठित मानव मन ,
अंतर्मुख प्रेरित हो उसको पाना जीवन दर्शन !
पशुओ से भी हीन, रेगता कृमियों सा, अह, मानव ,
भूल गया वह अंतर्गरिमा, ढोता आत्म पराभव !
प्राणि वर्ग का ईश्वर आज क्षुधार्त, विमूढ, निरावृत ,
भव वैभव से ओतप्रोत, मानव गौरव भू-लुठित !
निज आत्मिक ऐश्वर्य उसे श्रम तप से करना जागृत ,
दैन्यो मे विदीर्ण मानव को बनना फिर महिमान्वित !

देखो हे, ऐश्वर्य प्रकृति का, उसका प्रति अणु जीवित,
उसका श्री सौन्दर्य अमित, वह सृजन हर्ष आदोलित!
नाच रही भू हरित यौवना ज्योति ग्रहो से वेष्टित
बाहु पाश मे बाँध धरा को वारिधि चिर उद्वेलित!

सायं प्रात गाकर खग करते जीवन अभिनंदन,
सुख से सर्पित मुखर स्रोत नित, प्रीति स्रवित पिक कूजन!
सध्या ऊषा स्वर्णिम जीवन वैभव से चिर शोभन,
ज्योत्स्ना मे सोई भू को नभ तकता अपलक लोचन!

हिमशिखरो का आत्मोल्लास स्वय ज्यो विस्मय स्तभित,
षड् ऋतुओ का छायातप शत ध्वनि वर्णो से विरचित;
रंग प्राण रे रग जगत यह श्री सुषमा का जीवित,
रूप स्पर्श रस गंध शब्द तन्मात्राओ से झकृत!

नील गगन मे सुरधनु घन, घन उर मे चपला कपित,
तरुओ पर कलि कुसुम, कुसुम मे मधु, मधु पर अलि गुजित,
सरसी मे जल, जल मे लहर, लहर किरणो से चुबित,
केवल मानव उर अन्तर-सौरभ से आज न सुरभित!
ज्योति चूड लहरे उठ उठ करती नित गोपन इगित,
निखिल प्रकृति कहती रे उसमे अमृत सत्य अतर्हित!

यह प्रकाश, सौन्दर्य, प्रेम, उल्लास, रग सम्मोहन
मानव उर मे इन्द्रजाल बुनते रहते है मोहन!
अतर्बाह्य प्रकृति उपकरणो को सचित कर प्रतिक्षण
आओ, हम जन लोक रचे, देवो को दे आमत्रण!

महाप्राण रे विश्व चेतना हमे चाहिए केवल,
भू मंगल के साथ आज परिणीत व्यक्ति का मगल !
नव चेतन मनुजों से हो जग जीवन का सचालन,
आत्मोन्नति के लिए मिले अवसर, श्रम-प्रिय हो भू-जन !
मानव हो सयुक्त प्रकृति से, स्वर्ग बने भू पावन,
बहिरतर ऐश्वर्यो से चरितार्थ निखिल भव जीवन !

शशि मगल लोको को छूते आज कल्पना के पर,
शशि दे जन को स्वप्न, भौम मन मे साहस बल दे भर !
शशिप्रभ स्वप्नो से मगलमय स्वर्ग रचे हम सुंदर,
मानव जीवन मे अवतरित पुन हो मानव ईश्वर !

× × × ×

मृत्युहीन रे यह पुकार मानव आत्मा की निश्चय,
सत्य ज्योति अमरत्व ओर वह बढे अनागस निर्भय !
वैदिक ऋषि के अमृत निण्य वचनो की जग मे हो जय,
ये उपनिषत्, समीप बैठ रे, ग्रहण करे हम आशय !

अंध तम प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्याया रता ॥
विद्याचाविद्या च यस्तद्वेदोभय सह ।
अविद्यया मृत्यु तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥

अध तमस मे गिरते वे जो मात्र अविद्या मे रत,
उससे भूरि तमस मे वे जो विद्या मे रत सतत ।
विद्या ऽ विद्या उभय एक मे, भेद जिन्हे यह अवगत,
विद्यामृत पी, मृत्यु अविद्या से वे तरते अविरत !

ब्रह्मज्ञान रे विद्या, भूतों का एकत्व, समन्वय,
भौतिक ज्ञान अविद्या, बहुमुख एक सत्य का परिचय।
आज जगत मे उभय रूप तम मे गिरने वाले जन,
ज्योति केतु ऋषि दृष्टि करे उन दोनो का सचालन।
बहिरतर की सत्यों का जग जीवन मे कर परिणय,
ऐहिक आत्मिक वैभव से जन मगल हो नि.संशय।

× × × ×

रजत अनिल मे रश्मि तूलि से सत जल चित्रित
जीवन ऐश्वर्यों के सम्मोहन से रजित
देखो, इन्द्रधनुष से स्वर्ग धरा आलिगित,
विजय ध्वजा मानव भावी की, तम पर अकित!

चिन्तन

दुख मे मन करता ज्यो चिन्तन,
सुख मे जीवन दर्शन !

आज प्रौढ़ जीवन सध्यातप,
सागर की लहरो मे छप् छप्
यौवन स्मृतियाँ उठती कँप कँप !
गर्जन करते घुमड घुमड़ घन,
त्रस्त क्षितिज पर, विद्युत् द्युति से
चकित दृष्टि जाती है झँप झँप !

जो प्रकाश का प्रागण था मन
वह छाया का आँगन !

क्या यह सामाजिक सघर्षण
केवल रे मानव का जीवन ?
सुदरता आनद प्रेम के स्वप्न चिरतन
क्या केवल प्रभात के उडगण ?
रिक्त शरद घन ?

क्या यह उचित
कि यह सामाजिक साधारणता
मूल्य व्यक्ति का करे नियत्रित ?
जगम जीवन ज्वर की जडता
करे मनुज आत्मा मर्यादित ?

मानव जीवन नही उदधि सा
केवल कर्म फेन कल्लोलित,
लहरो की गति क्षण लहरों पर
उठ गिर होती अवसित!

मानव जीवन नही अकूल
अतलता ही मे सीमित,
वहाँ बूंद का मान उदधि से
कही अधिक है निश्चित!

बिन्दु सिन्धु? बूंदो का वारिधि
बूंदो पर अवलवित,
व्यक्ति समाज? व्यक्ति मे रहता
अखिल उदधि अंतर्हित!

सागर की असीमता जड है,
जन समाज की जीवित,
सृजन शक्ति का दूत व्यक्ति
करता समाज को विकसित!

आज अभाव शक्तियाँ जग में
काँटे बोती है पग पग मे,
सामाजिक समता का कटु विष
दौड रहा जन की रग रग में!

आज भाव की सृजन शक्तियाँ
उतर नही पाती है भू पर,

जो अतर्चेतना व्योम में
उमड रही देने जीवन वर !

आज चतुर्दिक् घृणा द्वेष
स्पर्धा से जग जीवन परितापित,
आज एकता के मदिर मे
अहम्मन्य जड समता स्थापित !

आज प्रतीति न प्रीति हृदय मे
औ' उल्लास न आशा,
प्रतिहिसा तृष्णा सशय भय
नयनो की शर भाषा !

आतमा मे सौन्दर्य नही निज,
मानव गरिमा मुख पर,
सृजन प्राण चेतना वाष्प सी
उड उड़ जाती ऊपर !

कब विश्वास प्रेम आशा
पुरुषार्थ उच्च अभिलाषा,
कला सृष्टि, सौन्दर्य दृष्टि
होगी जीवन परिभाषा !

आज जब कि जीवन सध्यातप,
स्वर्ण चूड लहरो मे छुप् छुप्
स्वप्नाकाक्षा उठती कँप कँप !
उदय हो रहा ज्योति नीड़ घन,

दिव्य क्षितिज पर तड़ित जागरण ,
मुग्ध नयन जाते है झँप झँप ।
छायाक्रांत–शात मेरा मन ,
पुनः जगमगा उठा चिरतन ।

मत्स्य गंधाएँ

स्वर्ण पंख साध्य प्रहर,
ज्योति तरंगित सागर
मान चित्र सा सुदर।
लहरों से लिपट लहर
लोट रही लहरो पर,
स्नायु हर्ष रहा सिहर।

पुलिन स्वप्न वेश्म जडित
ताल हस्ततल वीजित
यक्ष लोक सा चित्रित।
वाष्प ग्रथित मेघ सुभग
द्वाभा पखो मे रँग,
उड़ते ज्यो तूल विहग!

सौ सौ ये लोल लहर
परियों के रत्न-विवर
सौधों की स्वर्ण शिखर।
तट पर मै रहा विचर
ये परियाँ, सतरँग पर,
कहती आकर बाहर,—

'हम जीवन धात्री वर!'
सुनता मै फेन मुखर
विगलित मोती के स्वर!

'जीवन के अणु उर्वर
पाल पोस पृथ्वी पर
लाईं हम, भू नभचर!'

'ज्योति प्रीति प्राण सुघर
सिन्धु प्रजा, जन-सुखकर
रचे धरा स्वर्ग अमर,—
'देख रही उठ उठ कर
हम भूतट छू दुस्तर
मा की ममता से भर!'

अरुण ज्वाल

(नव चेतना)

ओ अरुण ज्वाल, चिर तरुण ज्वाल !

चेतना रुधिर लौ सी कपित ,
जीवन जावक से पद रजित ,
ऊषा पावक से खिला क्षितिज
दीपित करती तुम स्वर्ग भाल !

मेघो मे भर स्वर्णिम मरद ,
रँग रश्मि तूलि से रज अमद ,
जग की डाली डाली मे तुम
सुलगाती नव जीवन प्रवाल !

तुम रक्त सुरा सी सुर मादन ,
जड़ तुमको पी बनते चेतन ,
गुजरित भृग, कूजित कोकिल ,
मद से मजरित कनक रसाल !

स्वर्णोदय सी अतर्मन मे
मदिराभा भरती तुम क्षण मे ,
नीरव रहस्य के शिखरो पर
बुन श्री सुषमा सुख स्वप्न जाल !

नभ अनिल सलिल रे आज लाल ,
प्रज्वलित अवनि औ' देश काल ,
तुम डुबा रही भव सिन्धु पुलिन
आलोक ज्वार सी उठ विशाल !

स्वर्ण निर्झर

(सौन्दर्य चेतना)

स्वर्ण रजत के पत्रो की रत्नच्छाया में सुदर
रजत घटियो सा सुवर्ण किरणो का झरता निर्झर।
सिहर इद्रधनुषी लहरो मे इद्रनीलिमा का सर
गलित मोतियो के पीतोज्वल फेनो से जाता भर।
वहाँ सूक्ष्म छायाभा के तन पैर अमृत में मादन
वर्ण विभा से भरी अगभगी से हर लेते मन।
वह सौन्दर्य चेतना का नीहार लोक चिर मोहन
सहज स्फुरित हो उठता नीरव अतस्तल मे गोपन।

ऊषा की लाली से कल्पित नव वसत के कोपल,
सौरभ वाष्पो पर पुष्पों के शत रँग खिलते प्रतिपल।
शशि किरणो के नभ के नीचे, उर के सुख से चचल,
तुहिनो का छाया वन नित कँपता रहता तारोज्वल।
वहाँ एक अप्सरी, स्वर्ण चद्रातप से तन निर्मित
नवल अवयवो की जलतल की जाल व्रतति सी शोभित।
उसकी फूल देह को घेरे स्वर्ग लालसा गुजित,
कोमल एकाकी अगो पर नव लावण्य अनावृत।

सुप्त स्वर्ण चक्रागो से सुकुमार उरोजो पर स्थित
शुभ्र सुधा के मेघो की जाली उठती गिरती नित।
उठे कामना शिखरो से, स्वर्गिक श्वासो से स्पदित,
उन दो रजत प्रीति कलशो पर स्वर्ण शिराए वेष्टित।

ज्योति भँवर सी सुघर नाभि प्रिय रजत फुहार उदर में
स्वर्ण वाष्प का घन लटका जघनो के माणिक सर मे।
रजत शाति आत्मा के नभ की, झकृत उसके स्वर मे
मुक्ता घट मे स्वर्ण प्रीति की सुरा लिए वह कर मे।

मृदुल कामना लतिकाओ सी बाँहे प्रीति प्रलबित
आलिगन भरने को अति कोमल पुलकों से कल्पित।
रक्त सुरा प्यालो से करतल, प्रणय रुधिर से रजित,
दीप शिखाओ सी अगुलियो पर हीरक नख ज्योतित।
भौरो की गुजारो से श्लथ कुतल मसृण तरगित,
जिनके कोमल सुरभित तम मे स्वप्न काम के निद्रित।
वाणी के उद्ग्रीव हस सी ग्रीवा की शोभा सित,
भाल भृकुटि नासा श्रवण चिबुक उसके सतत निरुपमित।

स्वर्णिम निर्झर सी रति सुख की जघाओ पर पेशल,
लिपटी जीवन की ज्वाला निज दीपन करती शीतल।
नव प्रभात किरणो से चुम्बित रक्तोत्पल से पदतल,
लहरा उठती पग पग पर स्वर्गगा भू पर चचल।
खिले कपोलो मे गुलाब सुषमा के, छबि से लज्जित,
अधरो पर प्रवाल की मदिरा बनी मधुर अधरामृत।
इंदु रश्मि के कुद मुकुल ज्यो विगलित, दशनो मे स्मित,
नील कमल नयनों मे नीरव स्वर्ग प्रीति का विकसित।

बहता स्निग्ध स्पर्श प्राणो मे अमर चेतना सा नव,
उर को होता चिर प्रतीति की मधुर मुक्ति का अनुभव!

भर जाता मन में स्वर्गिक भावों का
हृदय हृदय का मिल, अभिन्न बनना हो

यह! सौन्दर्य चेतना उसके अमर प्रेम
दिव्य प्रेम देही, सुदरता उसकी सतरँग काया!
प्रेम सत्य, शिव सार, प्रेम मे रे आनद समाया,
दृढ़ प्रतीति को उसने अपनी चिर पद पीठ बनाया!

ज्योति भारत

ज्योति भूमि,
जय भारत देश !
ज्योति चरण धर जहाँ सभ्यता
उतरी तेजोन्मेष !

समाधिस्थ सौन्दर्य हिमालय,
श्वेत शांति आत्मानुभूति लय,
गंगा यमुना जल ज्योतिर्मय
हँसता जहाँ अशेष !

फूटे जहाँ ज्योति के निर्झर
ज्ञान भक्ति गीता वंशी स्वर,
पूर्ण काम जिस चेतन रज पर
लोटे हँस लोकेश !

रक्तस्नात मूर्छित धरती पर
बरसा अमृत ज्योति स्वर्णिम कर,
दिव्य चेतना का प्लावन भर
दो जग को आदेश !

नोआखाली के महात्मा जी के प्रति

कौन खडे उन्नत अविचल, दुर्धर झझा के सन्मुख ?
स्वर्ग दूत से, जाति भेद का हरने धरणी का दुख !
देह मात्र से मानव तुम, बल मे अदम्य तुम भूधर,
ऊर्ध्व चरण धर चलते निश्चल, भू से स्वर्ग क्षितिज पर !
ओने कोने मे प्रकाश से व्यापक, ऋजु गामी नित,
देवो का पावक कर-पुट भर भू पर करते वितरित !
आज राम कोदड तुम्हारे कर मे नव सधानित
दीप्त अहिसा तीरो से करता भू तमस पराजित !
यह सस्कृति का शस्त्र क्षेत्र मे राजनीति के रोपित
भावी मानव जीवन गौरव उर मे करता जागृत !

युग के धार्मिक नैतिक आर्थिक सघर्षों से कुठित
मानवता मे तुमने फिर नव हृदय कर दिया स्पदित !
इस वसुधा पर जिस सुवर्ण युग का यह अभिनव उपक्रम,
उसका पा आभास, देव, झुक जाता शीष ससभ्रम !

पंडित जवाहर लाल नेहरू जो के प्रति

जय निनाद करते जन, हे जनगण के नायक,
इस विशालतम जन समुद्र के भाग्य विधायक !

ज्योति रत्न तुम भारत के, हृदयोज्ज्वल, चेतन,
प्राणों की स्मित रंग श्री से बहुमुख शोभन !
फूलो के वाणों का रच नव कुसुमित तोरण
अभिनदन करता नव भारत का नव यौवन !
उर के चिर तारुण्य, पॉति मे युवति युवक गण
खड़े प्रीति सौन्दर्य द्वार बन अपलक लोचन !
जननि तुम्हारा मुख शिशुओ मे करती चुम्बन,
मानव होगे वे किसके आदर्श कर ग्रहण ?

उन्नत आज हिमाद्रि, उठाए नभ मे मस्तक,
वह शाश्वत भारत प्रहरी, तुम गौरव रक्षक !
सिन्धु तरगित हर्ष स्फीत करता जय गर्जन,
निखिल धरा मे करने को सदेश ज्यो वहन !

शत अभिवादन करता मन, भारत के नायक,
तन के मन के भूखों के नव भाग्य विधायक !

कोटि हस्त पद करो लोक गण का संचालन,
ज्योतित हों तम के मन, शोभित नग्न क्षुधित तन !
निर्मित करो पुन भारत का वैभव जीवन,
आर्ष भूमि पर उठे सास्कृतिक स्वर्गारोहण !

वसुधामयी, भरत भू मानवता-प्रेमी जन,
आत्मवान्, ऋषियो के तप से अतर्मुख मन;
खुले तुम्हारे हाथो युग युग के जड़ बधन,
ज्योति ज्वार सा जगे सुप्त भू का उपचेतन!
हो भारत स्वातंत्र्य विश्व हित स्वर्ण जागरण,
रक्त व्यथित भू पिए शाति सुख का सजीवन!
लौह अस्थि पजर मे यात्रिक युग के भीषण
मनुष्यत्व का हृदय कर उठे फिर से स्पदन!

ऊर्ध्व दड तुम बनो, इन्द्रधनु सी, सुर मोहन,
भारत की चेतना ध्वजा फहरे दिक् शोभन,
जीवन स्वप्न रग स्मित, अंतर्रश्मि प्रज्वलित,
प्रीति शिखा सी, विश्व व्योम कर ज्योति तरगित!

अगुंठिता

वह कैसी थी,
अब न बता पाऊँगा
वह जैसी थी!

प्रथम प्रणय की आँखो ने था उसको देखा,
यौवन उदय,
प्रणय की थी वह प्रथम सुनहली रेखा!

ऊषा का अवगुठन पहने
क्या जाने खग पिक से कहने
मौन मुकुल सी, मृदु अगो में
मधुऋतु बदी कर लाई थी
स्वप्नों का सौन्दर्य, कल्पना का माधुर्य
हृदय मे भर, आई थी!

वह कैसी थी,
वह न कथा गाऊँगा
वह जैसी थी!

'क्या है प्रणय?' एक दिन बोली, 'उसका वास कहाँ है?
इस समाज मे? देह मोह का,
देह द्रोह का त्रास जहाँ है?

'देह नही है परिधि प्रणय की,
प्रणय दिव्य है, मुक्ति हृदय की,

यह अनहोनी रीति,
देह वेदी हो प्राणो के परिणय की !

'बँधकर हृदय मुक्त होते है,
बँधकर देह यातना सहती,
नारी के प्राणो मे ममता
बहती रहती, बहती रहती !

'नारी का तन मा का तन है,
जाति वृद्धि के लिए विनिर्मित;
पुरुष प्रणय अधिकार प्रणय है,
सुख विलास के हित उत्कंठित !

'तुम हो स्वप्न लोक के वासी,
तुमको केवल प्रेम चाहिए,
प्रेम तुम्हे देती मै अबला,
मुझको घर की क्षेम चाहिए !

हृदय तुम्हे देती हूँ, प्रियतम,
देह नही दे सकती,
जिसे देह दूँगी अब निश्चित
स्नेह नही दे सकती !

'अत बिदा दो मन के साथी,
तुम नभ के, मै भू की वासी,
नारी-तन है, तन है, तन है,
हे मन प्राणो के अभिलाषी !

'नारी देह शिखा है जो
नव देहों के नव दीप सँजोती,
जीवन कैसे देही होता
जो नारीमय देह न होती ?

'तुम हो स्वप्नों के द्रष्टा, तुम
प्रेम ज्ञान औ' सत्य प्रकाशी,
नारी है सौन्दर्य, प्राण,
नारी है रूप सृजन की प्यासी !

'तुम जग की सोचो, मैं घर की,
तुम अपने प्रभु, मैं निज दासी,
लज्जा पर न तुम्हें आती,
बन सकते नहीं प्रेम संन्यासी !'

'बिदा !' 'बिदा !'
'शायद मिल जाएँ यदा कदा !'

मै बोला, 'तुम जाओ,
प्रसन्न मन जाओ, मेरा आशी ;'
उसके नयनों मे आँसू थे,
अधरों पर निश्छल हाँसी !

वह क्या समझ सकी थी, उस पर
क्यों रीझा था यह आत्मातुर
स्वप्न लोक का वासी ?

मैं मौन रहा ,
फिर स्वत कहा ,
'बहती जाओ, बहती जाओ ,
बहती जीवन धारा मे,
शायद कभी लौट आओ तुम ,
प्राण, बन सका अगर सर्वहारा मैं ।'

चिन्मयी

वह हिमाद्रि की मुक्त तापसी
मेरी चिर सहचरी, मानसी।

शुभ्र हिमानी का तन अचल,
आते जाते शत रँग पल पल,
निश्चल अतर, चितवन चचल,
झरते अश्रु, अजस्र स्थिर हँसी।

स्वच्छ कुद की कलियो का तन,
सुरभि-रहित-सौरभ का शुचि मन,
ज्योत्स्ना से गुठित शशि आनन,
अवनि, अनिल, आकाश मे बसी।

सहज चेतना की प्रकाश वह,
एक किरण, सतरँग विलास वह,
विश्व अभ्र पर इन्द्रहास वह,
पृथ्वी के तृण तृण पर विलसी।

खोल कल्पना के उर मे पर
स्वर्गिक शोभा की उड़ान भर,
फिर फिर आती हृदय मे उतर
मात्र हसिनी वह, उर सरसी।

मधु गाती गुण, भर पिक कूजन,
शरद पद्म सित करती अर्पण,
हिम उसकी स्मिति करती वर्षण,
वर्षा भरती मंगल कलसी!

वह हिमाद्रि की मुक्त तापसी!
मेरी चिर प्रेयसी, मानसी!

हिमाद्रि और समुद्र

वह शिखर शिखर पर स्वर्गोन्नत ,
स्तर पर स्तर ज्यो अतर्विकास
चढ सूक्ष्म सूक्ष्मतम चिद् नभ मे
करता हो शुचि शाश्वत विलास !
वह मौन गभीर प्रशात ऊर्ध्व
स्थित धी असग चिर निरभिलाष
आत्मा की गरिमा का भू पर
बरसाता हो अकलुष प्रकाश !

वह निर्विकल्प चेतना शृग
उठ स्वर्ग क्षितिज से भी ऊपर
अतर्गौरव मे समाधिस्थ
अपनी ही. सत्ता पर निर्भर !
वह ज्यो असीम सौन्दर्य अमर
जो तृण तृण पर से रहा निखर ,
वह रोमांचित आनद, नृत्य करता
विमुग्ध भव जिस लय पर !

यह ज्यो, अनत जीवन वारिधि ,
अहरह अशात औ' उद्वेलित ,
जिसके निस्तल गहरे रँग मे
अगणित भव के युग अतर्हित !

जग की अबाध आकाक्षा से
इसका अतस्तल आदोलित,
सुख दुख आशा आशका के
उत्थान पतन से चिर मथित ।

यह मनश्चेतना ज्यो सक्रिय
भू के चरणो पर बिखर बिखर
शत स्नेहोच्छ्वसित तरगो की
बाँहो मे लेती भू को भर ।
नभ से बन पवन, पवन से जल,
लालायित यह चेतना अमर
सोई धरती से लिपट, जगाने
उसे, युगो की जडता हर ।

वह महाकाल सा रे अलघ्य,
जो शाश्वत स्वर्ग मर्त्य प्रहरी,
यह महादिशा सा ही अकूल
जिसमे विराट् ससृति लहरी ।
हिमगिरि की गहराई ऊँची,
सागर की ऊँचाई गहरी
छाया प्रकाश की ससृति के
जीवन रहस्य मे है छहरी ।

भू प्रेमी

चाँद हँस रहा निबिड़ गगन मे, उमड रहा नीचे सागर ,
इन्द्रनील जल लहरो पर मोती की ज्योत्स्ना रही बिखर !
महानील से कही सघन मरकत का यह जल तत्व गहन ,
जिसमें जीवन ने जीवो का किया प्रथम आश्चर्य सृजन !

जल से भी कठोर धरती का लेकर धीरे अवलबन
जलज जीव ने सजग बढाए क्रम विकास के अथक चरण !
भू के गहरे अंधकार मे वही जीव अनिमेष नयन
देख रहा नभ ओर ज्योति के लिए, जहाँ रवि शशि उडगण !

धरती के पुलिनो मे उसकी आकाक्षाएँ उद्वेलित
फिर फिर उठती गिरती ऊपर के प्रकाश से आदोलित !
अच्छा हो, भू पर ही विचरे यह भू का प्रेमी मानव ,
मधुर स्वर्ग आकर्षण से नित होता रहे तरगित भव !

विस्तृत जो हो जाए मानव अतर, चेतनता विकसित ,
आत्मा के स्पर्शो से भू रज सहज हो उठेगी जीवित !
अंतर का रूपातर हो औ' बाह्य विश्व का रूपातर ,
नव चेतना विकास धरा को स्वर्ग बना दे चिर सुदर !

जन मन के विकास पर निर्भर सामाजिक जीवन निश्चित ,
संस्कृति का भू स्वर्ग अमर आत्मिक विकास पर अवलंबित !

पूषण

मैं पूषण हूँ, धरती का ज्योतिर्मय ईश्वर,
स्वर्ण रजत का चिर प्रकाश बरसाता भू पर!
जब धरती सोती तमिस्र का दे अवगुंठन,
मैं सुधांशु बन भरता दिव स्वप्नों से जन मन!
मेरे ही असख्य लोचन अपलक तारक गण,
अधकार को प्रहसित करते, भू भय छेदन!
मेरी किरणो से झरता धरती पर जीवन
प्राणो से तृण तरु जीवो का करता पोषण!

मेरा यह सदेश उठो हे, जागो, भूचर,
तुम हो मेरे अश, ज्योति सतान तुम अमर!
छोडो जडता, छिन्न करो भव भेदो का तम,
तुम हो मुझसे एक, एक तुम भूतो से, सम!
करो आत्मबल सचय, तोड़ो मन के बधन,
स्वर्ग बनाओ वसुधा को, भुज श्रम से शोभन!
अंधकार से लड़ो, यही मनुजोचित जीवन,
देवो के हो मुकुट तुम्हारे श्रम मुक्ता कण!

एक मत्र से हो सकती मानवता निर्मित,
पूषण मे सयुक्त रहे जो मानव निश्चित!
आत्म ऐक्य हो नीव, मनुष्य समाज का भवन
स्वर्गोन्नत हो, मुक्त व्यक्ति रुचि के वातायन!

जिज्ञासा

यह ओसो की डाल पिरो दी किसने जीवन के आँगन मे ?
हास अश्रु की सजल ज्वाल यह किसने फैला दी दिशि क्षण मे !
ताराओ से पुता हुआ नीरव अनत चिर अवनत ऊपर ,
कौन गहन के अवगुठन से झाँक रहा वह हँस हँस भू पर ?

इस धरती के उर मे है उस शशि मुख का असीम सम्मोहन ,
रोक नही पाते भू के तट जीवन वारिधि का उद्वेलन !
किस अदम्य आकाक्षा से अतरतम जग का रे आन्दोलित ,
किसकी गति से भ्रमित महा नीलिमा बन गई कैसे ज्योतित !

यह अगाध निस्तल रहस्य किसका अकूल मे व्याप्त नील घन ,
तडक रही जिसमे विद्युत सी विश्व कामना भर गुरु गर्जन !
क्यो प्राणो से हरित धरित्री, किस सुख से जीवन अणु स्पदित ?
किसकी शुभ्र किरण यह सहसा सतरँग इन्द्र धनुष मे चित्रित !

लौट लौट आते तट छूकर वाद विवाद शास्त्र षड् दर्शन ,
सतत डूबते उतराते सुख दुख इच्छाए जन्म औ' मरण !
श्याम, विश्व घनश्याम, गहन घनश्याम रहस्य अनत चिरतन ,
चिर अनादि अज्ञेय, पार जा पाते नही चक्षु वाणी मन !

स्वर्णिम पराग

(मन)

स्वर्णिम पराग, स्वर्णिम पराग !
यह उडता सुमनो से मन के
जीवन का स्वर्ण हास्य बन के,
छा जाता भू नभ पर छन के
रँग रँग भावो का मधुर राग !
पीली लौ सी अलके कुचित,
करती तन प्राणो को पुलकित,
सौरभ से अग जग समुच्छ्वसित,
इसके रोओ मे भरी आग !

यह रे हिरण्य का अवगुठन
चेतना ढँके जिससे आनन,
दिशि दिशि मे इसकी स्वर्ण किरण
बरसाती श्री सुषमा सुहाग !
यह स्वर्ग- प्रीति-मधु से गर्भित,
चिर मर्म कामना से सुरभित,
प्राणो के चल सुख से गुजित,
मद को पी गाते जन विहाग !

भीतर बाहर इससे रंजित,
इसकी रज से जीवन निर्मित,
कुंकुम के स्पर्शों से मोहित
खेलते चराचर प्रणय फाग !

ऊषा

(मन स्वर्ग)

(१)

लो, वह आई विश्वोदय पर
स्वर्ण कलश वक्षोजो पर धर !
अर्ध विवृत कर ज्योति द्वार पट ,
ज्वलित रश्मियो की अजलि भर !

वह पवित्रता सी अभिषेकित ,
सद्य स्फुट शोभा मे आवृत ;
आई अरुणोदय मदिर मे
पथ प्रकाश का करने विस्तृत !

आनन मे लावण्य अगुठित ,
प्रीति दृष्टि आलोक से स्तिमित ,
दिव्य चेतना की ऊषा वह
अधर पल्लवो मे प्रभात स्मित !

ज्योति नीड के विहग जगे, गाते नव जीवन मगल ,
रजत घटियाँ बजी अनिल मे, ताली देते तरुदल !
चूम विकच नलिनी उर, गूँजे गीत पख मधुकर दल ,
नृत्य तरगित बहे स्रोत, ज्यो मुखरित भू पग पायल !
विहँसे हिमकण किरण गर्भ, स्वर्गिक जीवन के से क्षण ,
खोल तृणो के पुलक पख उडने को भू रज के कण !
वसुधा के उरोज शिखरो से खिसका चल मलयाचल ,
सरिता की जाँघो से सरका लहरा रेशम सा जल !

स्वर्ग विभा धरती को छू हो उठी सुरजित ,
ज्योति तमस मिल हुए विश्व द्वाभा मे विकसित ।
शुभ्र चेतना हँसी हृदय के रागो मे स्मित ,
जीवन के वैभव से हुई धरा रज कुसुमित ।

रग चपल पुष्प हास पख खोल भूमि कत
भृग गुंजरित, पिकी रटित जगा नवल वसत ।
नव प्रवाल प्रज्वलित श्वसित रजत हरित दिगत ;
गीत गंध मधु मरद हिम ग्रथित समीर मंद ।
अमंद रहस गीत नृत्य नाद से दिशा ध्वनित ,
अनत नीलिमा सृजन तरग भगिमा गलित ।
अबाध कामना मथित समुद्र वारि उच्छ्वसित ,
अलघ्य शैल शृग मौन चित्र शाति मे जडित ।

कुजो के कपित भूतल पर
ढँक रजत हरित जाली से तन
छाया की बाँहो मे आतप
अँगड़ाता स्वप्नो से उन्मन ।
श्लथ कर कचुक की पखडियाँ
कलियो के नव उर कर विकसित ,
फूलो पर कँपता मलयानिल
स्वर्णिम मरद रज से सुरभित ।
लहरो से लिपट रही लहरे
तरुओ से लतिकाएं कोमल ,

भूरज पर लोट रही किरणे
तरुदल को चूम रहे तरुदल ।

स्वर्ण रजत की धूलि से भरा निखिल दिगतर,
मनश्चेतना चूर्ण उड रहा हो ज्यो भास्वर ।
दिव्य उषा के मनोहास्य से दिशि आलोकित,
सूक्ष्म सृष्टि नीहार सृजन सुख से आदोलित ।

नव प्रवाल लाली मे गुठित
छुईमुई सी लज्जा कोमल,
मसृण जलद मे शशि छाया सी
आ-जा, दिखती छिपती प्रतिपल ।
अधरो पर भरती मृदु मर्मर,
कँपते गालो मे स्वर्णिम सर,
स्वर्ग विभा रज तन को छूकर
खिलती सकुचाती क्षण क्षण पर ।

व्रीडा दौडी भू पर आ ऊषा के मुख पर
प्रणय रुधिर से हृदय शिराए कॉपी थर् थर् ।
अधर पल्लवो मे जागा मधु स्वर्णिम मर्मर,
मौन मुकुल मुख खिला लालिमा से रँग सुदर ।
क्या था गिरि कुजो मे, सरित तटो मे गोपन
मर्म मधुर लज्जा मे लिपटी जो अमर किरण ।
सलज किसलयो का धर आनन पर अवगुठन
स्वर्ग चेतना बनी लाज मदिरा पी मोहन ।

नवल उरोज सरोज हुए सरसी के दोलित,
लहरो का आँचल दे वह तन करती आवृत,
अमिट कामना स्पदित षट्पद शत स्वर गुजित
उड़ते, ईषत् नव कलियो का मुख कर चुबित!

रत्नच्छाया मे ज्यो परिवृत -
आई सज्जा चरण धर रणित,
मणि मुक्ताओ के कर इगित
स्वर्ण रजत सुषमा मे झकृत!
पुष्प पँखडियो के शत रँग पर,
तुहिन तरल नख, नव पल्लव कर,
धरती पग कुछ नभ कुछ भू पर
इन्द्र धनुष प्रति रजकण मे भर!

किया तापसी को खिल नव कलियो ने सज्जित,
मधुऋतु के रगो की चोली से कर वेष्टित!
लिपटी लता पदो से चल अलियों से गुजित,
स्वर्ण मजरित कटि काची झनकी पिक कूजित!

मल्लिका बनी हृदय का हार
स्वर्ण गेदा श्रुति भूषण स्फार,
कचों मे गुँथे बकुल सुकुमार
हँसे ककण बन हरसिगार!
यूथिका बनी वलय कोमल
कुमुद वक्षोजो बीच तरल!

शीष का फूल शिरीष नवल,
पदो पर खिल वजुल पायल!

(२)

सरसि से लहरे चञ्चल प्राण,
खिला सरसिज सा जीवन-सार,
हृदय के शत-दल खुले अजान
भाव सुषमा से रँग सुकुमार!
सलिल पर ज्यो पकज के पत्र
चेतना पर जीवन का भार
लगा तिरने, स्वप्नो का छत्र
पद्म सा जगा मनस साकार!
मर्म मे अमृत प्रीति मधुकोप,
दलो मे ध्वनित स्पृहा गुजार,
स्वय ज्यो जीवन का परितोष
बना शोभा विकास विस्तार!

अमर चरण रँग हृदय राग से, मरण शील बन,
परम अहम्, चेतना वृद्धि बन, तपस से सृजन
करने लगे मनो जीवन का स्वप्नो से घन,
आत्मा का ऐश्वर्य वॉध भावो मे मोहन!

तुहिन कणो का मुकुट पहन आनद बना सुख,
चटुल लहरियो पर चल, किरणो से ढँक स्मित मुख!
स्रोतो मे मोती, तरुदल मे काचन मर्मर
रजन अँगुलियो मे समीर के पुलक स्पर्श भर!

हृदय शिराए झकृत, पलक निमिष से चंचल,
उतरा वह भू पर पकडे शोभा का अंचल।
रोओं मे विद्युत्, श्वासो मे विस्मृति मादन,
मदिर प्रीति की स्वर्ण सुरा का पी सजीवन।

गात्र कनक चपक ज्योत्स्ना का, केसर पुलकित,
उर के रजत हस नव इन्द्र जलद से सवृत,
शोभा थी स्वप्नो की कोमलता से कल्पित,
स्वर्ण किकिणी स्मिति प्रवाल अधरो पर झकृत।
सीप छटा सा उदर, नाभि मुक्ताफल सी स्मित,
पुष्प पुलिन जघनो पर चिर लालसा तरगित,
वह लावण्य व्रतति थी कटि तनिमा से दोलित,
प्रीति पाश बाँहे पुलको से स्पर्श-प्रलबित।

उसे देख, वसुधा के स्वप्नो का जग अपलक
रँग रँग की पखड़ियो मे खिल उठा अचानक।
रंगो का हँस उठा इन्द्र सम्मोहन व्यापक,
गूंज उठी, कल कूक उठी कामना जग अथक।

मधुलिह् चुबि शिरीष वेणि, लेखा शशि आनन,
सुरभि वाष्प के वसन, हिमानी धौत कुसुम तन,
आई प्रीति, पकड प्रतीति का रश्मि-स्पर्श कर,
उर स्पदन से दोलित, आशा के खोले पर।
स्वप्नो का पट बुन उसने, उर रागो से रँग,
जन्म मरण, सुख दुख, विरह मिलन बाँधे सँग सँग।
उदधि उच्छ्वसित, पृथ्वी पुलकित, अपलक उडगण,
औ' अवाक् गिरि, किया सभी ने आत्म समर्पण!

प्राणों के स्वप्नालिगन मे बँध वसुधा पर
सृजन-प्राण बन गए स्वय को भूल चराचर।
रक्त सुरा, सगीत बना उर उर का स्पदन,
पुलको मे पल्लवित हँस उठे जड औ' चेतन।

तुहिन वाष्प के सुरँग जलद से छादित
इन्दु रश्मि के इन्द्रजाल से स्पर्शित,
अर्ध विकच कलिका के उर मे जृभित
स्वप्न दिखाई दिया रहस सुख से स्मित।
स्वर्णिम केसर की अलके थी सुरभित,
अर्ध खुले लोचन रहस्य से विस्मित,
ऊर्मिल सरसी सा उर शशि कर गुफित,
इन्द्र धनुष छाया पट से तन आवृत।

सृजन प्ररोह हृदय मे था चिर गोपन,
मुग्ध कल्पना सँग कर उसने प्रजनन
भरा धरा मे अतुल मनोमय जीवन,
उर उर मे मधु आकाक्षा का गुजन।

हिम कुन्देन्दु समान कल्पना शोभित
सित सरसिज पर लेटी शशि कर सी स्मित;
धूप छाँह रँग तिर अचल मे अगणित
करते थे मानस को रग तरगित।
प्राणो की झकृत तत्री कर मे धर
बरसाती उर मे रागो के मधु स्वर,

सुघर इगितो से शोभा पडती झर
मर्म मधुर नीरव स्मिति से रस निर्झर।

आई आशा, शशि की रजत तरी पर चढ़ कर,
स्वर्ण हास्य से आलोकित कर मेघो का घर।
गीत स्वप्न से ग्रथित मनोजव के खोले पर,
चपल तडित भ्रू भगो से पुलकित कर अतर।
रजत पल्लवो की ज्वाला से वेष्टित प्रिय तन,
उदधि ज्वार पर चढ फेनो पर करती नर्तन।
चिर अधखुले उरोजो पर जलते थे उडगण,
रजस्राव के अभ्रक से ज्योतित भू रज कण।

शरद चद्रिका स्नात मल्लिका सी नव निर्मल
हिम वाष्पों का झीना पट पहने किरणोज्वल,
शैशव की स्मिति सी प्रतीति आई चिर निश्छल,
भर अनभ्र नीलिमा मौन नयनो मे निस्तल।
इन्दु रश्मि घट मे ला स्वर्ग सुधा हिम जल स्मित
पावन उसने किए हृदय भेदो से पीडित,
दशनो की आभा स्मिति से अतर कर विगलित,
प्राण किए कोमल मृणाल के ततु मे ग्रथित।

लहरो के पुलिनो से अचपल
जागे धैर्य शौर्य उर सबल,
हिम शिखरो से उन्नत अविचल
अंतर पौरुष से अरुणोज्वल।

रजत स्वर्ण ज्वालो के सुदर
कर मे धरे त्रिशूल अभयकर,
झझा लहरो के तुरगो पर
आए वे तम भ्रम के जित्वर।
नभ से नीरव निस्तल लोचन,
धरती सा था धीरज का मन,
शौर्य सपख अद्रि सा शोभन,
छू न सका था जिसे वृत्रहन्।
आत्म त्याग,—तप से दीपित तन,
मृत्यु कठ, आपद् आभूषण,
प्रकट हुआ, आक्षितिज थे नयन,
ममता घन से शून्य उर गगन।
सेवापगा विरति शशि मस्तक
उर मे थी विनम्रता की स्रक्,
शात गहन निशि नभ सा अपलक,
अथक कर्म रत, भव से अपृथक्!

सेवा उतरी, ज्यो गगा जल,
कलुष तृषित लहरो से चचल,
तन पर वीतराग सध्याचल,
नत मुख पर श्रमकण मुक्ताफल।
स्तिमित दृष्टि थी, अधर सहज स्मित,
सेवा का वक्षस्थल विस्तृत।
ध्रुव-तारा से पथ चिर ज्योतित,
काँटो को करती थी कुसुमित।

सँग कृतज्ञता थी, सजल नयन,
आकुल अतर, मूक थे वयन,
सुघर कुँई सी स्वप्निल चितवन
लिपट व्रतति सी जाती तत्क्षण!

विनत मुकुल सा सुहृद था विनय,
ग्रहण शील, चिर निरलस, निर्भय!
वह स्वभाव ही से था सहृदय,
निज अतर्वैभव मे तन्मय!
इन्दु विभा ज्यो जलदो से छन
बेला बन मे लगती मोहन,
मौन मधुर गरिमा से शोभन
बना शील, सस्कृत जग जीवन!

जुगनुओ के ज्योति मडल से घिरा मुख शात
तारिकाओ की सरसि सा स्वप्न स्मित उर प्रात;
इन्दु विगलित शरद घन सा वाष्प का तन कात
सजल करुणा थी खडी ज्यो इन्द्र धूम दिनांत!
अतल नील अकूल नयनो का द्रवित नीहार,
अश्रु फेनो से स्फुटित स्पदित उरोज उभार;
आर्द्र सौरभ श्वास, स्मिति हिम-स्रस्त हरसिंगार,
स्खलित होते स्रोत भू से सुन चरण झंकार!

सहचरी थी क्षमा, गौरव रश्मि चुम्बित भाल,
युग पयोधर थे सुधास्रुत् ज्योति कलश विशाल;

न्याय को धर अक मे मुख चूमती थी बाल,
दृष्टि पथ पर पख खोले शुभ्र रजत मराल!
दीप लौ सी थी अँगुलियाँ वरद कर मे स्फार,
चूम अधरो को सुरा बनती सुधा की धार,
स्पर्श पा हँसता पुलक सुख से व्यथा का भार,
मर्त्य से था स्वर्ग तक दृग नीलिमा विस्तार!

आभा देही श्रद्धा प्रकटी अतर्लोचन,
उर के सार भाग से कल्पित था प्रिय-श्री तन!
बरसाती आशीष रश्मि थी स्वर्गिक चितवन,
दिव्य रजत नीहार शाति से मडित आनन!
भू प्रदीप की शिखा स्वर्ग की ओर ऊर्ध्वचित्
वह निश्चल निष्कप, स्तभ किरणो की शोभित,
सूक्ष्म चेतना सिन्धु मथन से स्वत प्रस्फुटित,
शुभ्र उषा सी थी उर नभ मे उदित अगुठित!

साथ भक्ति थी, रोमाचो की स्रक् सी पावन,
नयनो के अभ्रो से झरते थे प्रकाश कण!
अधरो के पुलिनो पर बहता स्मिति का प्लावन,
उर-कपन मे बजते प्रिय पग नूपुर प्रतिक्षण!
तप्त कनक द्युति देह, सहज चदन सी वासित,
गैरिक श्रृगो से उरोज थे अश्रु माल स्मित,
सित कर्पूर शिखर सी, दिव्य शिखा से दीपित
साध्य पद्म सा ध्यान मग्न उर प्रिय को अर्पित!

रक्त घनो की दीप गुहा मे, दृष्टि कर चकित,
ज्वलित अर्चियो की प्रतिभा, हो तड़ित सी स्फुरित,
दौडी मानस लहरो पर आलोक चमत्कृत,
सुरँग खगो से उडते थे स्वर शब्द कल ध्वनित!
वर्ण वर्ण की गलित विभा से स्रवित कलेवर,
चपल चौकडी भरता शशि मृग था प्रिय सहचर!
स्निग्ध सुरभि सी उडती थी समीर पखो पर
दिव्य प्रेरणा किरणो की जाली मुख पर धर!

मुक्ति, सत्य औ' श्रेय अत मे हुए अवतरित,
सृष्टि पद्म सी मुक्ति हुई दश दिशि मे विकसित!
वधन हीन विविध वधन मे बँधती वह नित,
सूक्ष्म वाष्प से हिम, हिम से बन वाष्प अपरिमित!

मुक्ति पद्म पर धरे सत्य आलोक के चरण
हँसता था, आनन से उठा हिरन्मय गुठन,
निज-पर को ज्यो भूल धरा के जड औ' चेतन
सत्य बन गए, स्वय सत्य था रज का प्रतिकण!
सत्य सुदूर समीप, सत्य था भीतर बाहर,
एक अनेक, सत्य ही था केवल, क्षर, अक्षर!
धरा सत्य थी, सत्य पवन जल पावक अबर,
सत्य हृदय मन इन्द्रिय, सत्य समस्त चराचर!

अकथनीय था सत्य, ज्योति मे लिपटा शाश्वत,
अणु से भी लघु देह ज्वलित गिरि शृग सी महत्!

दृष्टि रश्मि थी ज्योति पथिक औ' स्वय ज्योति पथ ,
चिर जाज्वल्यमान स्थिर धावित सप्त अश्व रथ ।
किरणो के दूर्वाप्रभ नभ सी मुक्ति थी अमित ,
शुभ्र हस घेरे थे उसको पख खोल स्मित ।
था आनद उदधि अकूल उर मे उद्वेल्लित ,
ज्योति चूर्ण झरता अगो से मुक्त अनावृत ।

अर्ध विवृत जघनो पर तरुण सत्य के शिर धर
लेटी थी वह दामिनि सी रुचि गौर कलेवर ,
गगन भग से लहराए मृदु कच अगो पर ,
वक्षोजो के खुले घटो पर लसित सत्य कर ।

समाधिस्थ था श्रेय, सत्य आरूढ निरतर ,
धरे अक मे भू को, सुर जल स्रोत शीर्ष पर ,
ताप गले मे, सुधा शाति मस्तक पर भास्वर ,
लिपटा तन से भाव अभाव भूति औ' विषधर ।
सदसद् देश काल से पर, त्रिक् तपस शूल धर ,
देवो का पोषक था वह, दैत्यो का जित्वर ,
काम क्रोध मद मत्सर थे उसके पद अनुचर ,
वह स्वर्णिम किरणो से मडित, पाप तमस हर ।

इस प्रकार चिर स्वर्ग चेतना हुई प्रतिष्ठित
जीवन शतदल पर, मन के देवो से भूषित ।
जड धरणी के ताप शाप दुख दैन्य अपरिमित
काको से पर खोल हुए लय तमस मे अचित् ।

चंद्रोदय

वह सोने का चाँद उगा ज्योतिर्मय मन सा,
सुरँग मेघ अवगुंठन से आभा आनन सा!
उज्वल गलित हिरण्य बरसता उससे झर झर,
भावी के स्वप्नों से धरती को विजड़ित कर!

दीपित उससे अंतरिक्ष पर मेघों का घर,
वह प्रकाश था कब से भीतर नयन अगोचर!
इन्दु स्रोत से ही प्रस्रवित निभृत अभ्यंतर,
प्राणों की आकांक्षा के वैभव से सुंदर!

वह प्रकाश का बिम्ब मोहता मानव का मन,
स्वप्नों से रंजित करता भू का तमिस्र घन!
आत्मा का पूषण वह, मनसोजात चंद्रमस्,
जिससे चिर आंदोलित जग जीवन का अंभस्!

देव लोक मेखला, इन्दु पूषण का अंतर,
सृजन शक्तियाँ देव, इन्द्र है जिनका ईश्वर!
दिव्य मनस वह, करता निखिल विश्व का चालन,
पोषित उससे अन्न प्राण मन का जग जीवन!

वह सोने का चाँद उठा ज्योतित अधिमन सा,
मानस के अवगुंठन के भीतर पूषण सा!
दुग्ध धार सी दिव्य चेतना बरसा झर झर
स्वप्न जड़ित करता वह भू को स्वर्जीवन भर!

द्वा सुपर्णा

दो पक्षी है . सहज सखा, सयुक्त निरंतर ,
दोनो ही बैठे अनादि से उसी वृक्ष पर !
एक ले रहा पिप्पल फल का स्वाद प्रतिक्षण ,
बिना अशन, दूसरा देखता अतर्लोचन !
दो सुहृदो से मर्त्य अमर्त्य सयोनिज होकर
भोगेच्छा से ग्रसित भटकते नीचे ऊपर ,
सदा साथ रह, लोक लोक मे करते विचरण ,
ज्ञात मर्त्य सब को, अमर्त्य अज्ञात चिरतन !

कही नही क्या पक्षी ? जो चखता जीवन फल ,
विश्व वृक्ष पर नीड़, देखता भी है निश्चल !
परम अहम् औ' द्रष्टा भोक्ता जिसमे सँग सँग ,
पखो मे बहिरतर के सब रजत स्वर्ण रँग !
ऐसा पक्षी, जिसमे हो सपूर्ण सतुलन ,
मानव बन सकता है, निर्मित कर तरु जीवन !
मानवीय सस्कृति रच भू पर शाश्वत शोभन
बहिरतर जीवन विकास की जीवित दर्पण !
भीतर बाहर एक सत्य के रे सु पर्ण द्वय ,
जीवन सफल उडान,पक्ष सतुलन जो, विजय !

व्यक्ति और विश्व

यह नीला आकाश न केवल,
केवल अनिल न चंचल,
इनमें चिर आनंद भरा
मेरी आत्मा का उज्ज्वल!
हलकी गहरी छाया के जो
घिरते ये रँग-बादल,
मेरी आकांक्षा की विद्युत्
बहती इनमे प्रतिपल!

मेरी प्राणो की हरीतिमा
तृण तरु दल मे पुलकित,
मेरी प्रणय भावना से ही
कली कुसुम नित रजित!
मै इस जग मे नही अकेला
मुझको तनिक न सशय,
वही चाह है कण कण मे
जो मेरे उर में निश्चय!

मेरे भीतर परिभ्रमित ग्रह,
उदित अस्त शशि दिनकर,
मै हूँ सब से एक, एक रे
मुझसे निखिल चराचर!

कब से हो जग से वियुक्त
मेरा अंतर था पीडित,
आज खड़ा भाई बहिनों के
सँग मै चिर आनंदित!

प्रभात का चाँद

नील पक मे धँसा अश जिसका
उस श्वेत कमल सा शोभन
नभोनीलिमा में प्रभात का
चॉद उनीदा हरता लोचन !
इसमे वह न निशा की आभा,
दुग्ध फेन सा यह नव कोमल,
मानवीय लगता नयनों को
स्नेहपक्व सकरुण मुख मडल !

तिरते उजले बादल नभ मे
बेला कलियों से कुम्हलाए,
उड़ता सँग सँग नाग दत सा
चॉद सीप के पर फैलाए !
आभा इसकी हुई अतरित
यह शशि मानो भू का वासी,
यह आलोक प्राण है, मुख पर
जीवन श्रम की भरी उदासी !

दिव्य भले लगता हो किरणो से
मडित निशिपति का आनन,
गौर मांस का सा यह शशि मुख
भाता मुझे ज्योति आवृत मन !

उदित हो रहा भू के नभ पर
स्वर्ण चेतना का नव दिनकर
आज सुहाते भू जीवन के
पावन श्रमकण मानव मुख पर !

ऐसे ही परिणत आनन सा
यह विनम्र विधु हरता लोचन,
भू के श्रम से सिक्त, नम्र
मानव के शारद मुख सा शोभन !

हरीतिमा

(प्राण)

ओ हरित भरित घन अंधकार !

तृण तरुओं मे हँस हँस श्यामल
दूर्वा से भू को कर कोमल ,
ढँक लेते जीवन को प्रतिपल
तुम प्राणों का अचल पसार !

सुख स्पर्शों से अणु अणु पुलकित ,
मादकता से उर उर स्पदित ,
अति चाव से श्वास अनिल नर्तित ,
तुम रंग प्राण करते विहार !

तुम प्राणोदधि चिर उद्वेलित
जीवन पुलिनों को कर प्लावित ,
जड़ चेतन को करते विकसित
अग जग मे भर नव शक्ति ज्वार !

तुममे स्वप्नो का सम्मोहन ,
आकाक्षा की मदिरा मादन ,
आवेगों का मधु सघर्षण ,
दुर्धर प्रवाह, गति औ' प्रसार !

जग जीवन को कर परिशोभित ,
इच्छाओ के स्तर स्तर हर्षित ,
रागों द्वेषों से चिर मथित ,
निस्तल अकूल तुम दुर्निवार !
ओ रोमाचित हरिताधकार !

छाया पट

मन जलता है ,
अंधकार का क्षण जलता है ,
मन जलता है !

मेरा मन तन बन जाता है ,
तन का मन फिर कट कर ,
छँट कर ,
कन कन ऊपर
उठ पाता है !
मेरा मन तन बन जाता है !

तन के मन के श्रवण नयन हैं ,
जीवन से सबंध गहन है ;
कुछ पहचाने, कुछ गोपन हैं ,
जो सुख दुख के संवेदन है !

कब यह उड़ जग मे छा जाता ,
जीवन की रज लिपटा लाता ,
औ' मेरे चेतना व्योम मे
इन्द्रधनुष घन बन मुसकाता ?
नही जानता, कब, कैसे फिर
यह प्रकाश किरणे बरसाता !

बाहर भीतर ऊपर नीचे
मेरा मन जाता आता है,
सर्व व्यक्ति बनता जाता है!

तन के मन में कही अतरित
आत्मा का मन है चिर ज्योतित,
इन छाया दृश्यो को जो
निज आभा से कर देता जीवित!

यह आदान प्रदान मुझे
जाने कैसे क्या सिखलाता है!
क्या है ज्ञेय? कौन ज्ञाता है?
मन भीतर बाहर जाता है!

मन जलता है,
मन मे तन मे रण चलता है,
चेतन अवचेतन नित नव
परिवर्तन मे ढलता है!
मन जलता है!

आवाहन

सृजन करो नूतन मन !
खोल सके जो ग्रंथि हृदय की,
उठा सके संशय गुंठन,
आँक सके जो सूक्ष्म नयन से
जीवन का सौन्दर्य गहन !
भेद सके जो दैन्य दुरित औ'
मृत्यु अविद्या के भीतर,
जहाँ प्रेम आशा शोभा
अमरत्व प्रतिष्ठित है प्रतिक्षण !

युग युग से प्रार्थना साधना
करता मानव, हे ईश्वर,
मुझे स्वर्ग दो, मुझे मुक्ति दो,
बांधव पुत्र पौत्र स्त्री धन !
जाति के लिए, धर्म के लिए,
वंश बेलि के लिए अमर
युग युग से रोया गाया है,
पार्थिव मानव देहज मन !

सृजन करो नूतन मन!
प्रार्थी आज मनुज आत्मज मन
नव्य चेतना का भूपर,
जिसकी स्वर्णिम आभा मे
विकसित हो नव सस्कृत जीवन!
प्रार्थी आज निखिल मानवता,
उठे मृत्यु से वह ऊपर,
स्वर्ण शाति मे ऐक्य मुक्ति का,
भू पर स्वर्ग उठे शोभन!

निवेदन

रँग दो मेरे उर का अचल !
युग युग के आँसू से गीला
मेरा स्नेही का अतस्तल !

कितनी आशका भय, आशा ,
ग्लानि पराभव औ' अभिलाषा ,
कितने स्वप्न--मूक है भाषा !
मेरे इन प्राणो मे कोमल !

जीवन का चिर भरा कलपना ,
सुख का तपना, दुख का तपना ,
भंग करो मत स्वपना अपना ,
केवल मन को दो अदम्य बल !

सब खोकर भी मैंने पाया ,
तुमको जो उर मे उलझाया,
ममता की अ गुठन छाया
रहने दो निज मुख पर उज्वल !

मै न थकूँगा हो अनंत पथ ,
जरा मृत्यु से तन मन लथपथ ,
ज्ञात न हो जीवन का इति-अथ ,
चिर प्रतीति का दो पथ सबल !

भू लता

घने कुहासे के भीतर लतिका दी एक दिखाई,
आधी थी फूलो मे पुलकित, आधी वह कुम्हलाई!
एक डाल पर गाती थी पिक मधुर प्रणय के गायन,
मकडी के जाले मे बन्दी अपर डाल का जीवन!

इधर हरे पत्ते यात्री को देते मर्मर छाया,
उधर खडी ककाल मात्र सूनी डालो की काया!
विहगो के थे गीत नीड़, कृमि कुल का कर्कश क्रदन,
मै विस्मय से मूढ, सोचता था इसका क्या कारण!

बोली गुजित हरित डाल, साँसे भर सूखी टहनी,
मै हूँ भाग्य लता अदृष्ट, मै सगी काल की बहनी!
सुख दुख की मै धूपछाँह सी भव कानन मे छाई,
आधे मुख पर मधुर हँसी, आधे पर करुण रुलाई!

शूल फूल की बीथी, चलता जिसमे रोना गाना,
खोज खोज सब हार गए, मुझको न किसी ने जाना!
मैने भी ढूँढा, पर मुझको मूल न दिया दिखाई,
वह आकाश बेलि सी जीवन पादप पर थी छाई!

जन मन के विश्वासो से बढती थी वह हो सिचित,
एक दूसरे से लिपटे थे, जिससे थी वह जीवित!
सब मिल उसको छिन्न भिन्न कर सकते थे, यह निश्चित,
किंतु उसी के बल पर रे मानव मानव से शोषित!

नाच रही जो ज्योति ज्योति-पिंडों मे वैभव भास्वर,
कहती वह, यह छाया मेरी नही, तुम्हारी भू चर!
छोड़ो युग युग का छाया मन, वरो ज्योति मन भव जन!
प्राक्तन जीवन बना भाग्य, चेतना मुक्त हो नूतन!

कौवे के प्रति

तरु की नग्न डाल पर बैठे लगते तुम चिर सुदर,
कोविदार के शकुनि, पार्श्वमुख, साध्य कपिश नभ पट पर!
कृष्ण कुहू मे जनमे तुम तरु कोटर मे, बन नभचर,
तारो की ज्यो छाँह गले पड गई नीड से छन कर!

पखो की काली उडान तुम भरते नित ऋजु कुचित,
शुभ्र ज्योति का तुम पर कभी प्रभाव न पडता किञ्चित्!
रग नही चढता जिस पर वह यती व्रती है निश्चित,
समिध पाणि मै प्रश्न पूछता तुमको मान विपश्चित!

तुम भविष्य वक्ता जग विश्रुत, प्रणय दूत कवि कीर्तित,
मढवा चुके चोच सोने से फिर फिर प्रीति पुरस्कृत!
क्या है जग के दुरित दैन्य का कारण? खग, दो उत्तर,
कलुष कालिमा की होगी कालिमा तुम्हारी सहचर!

मत्री वृद्ध तुम्हारे कौशिक दिवाभीत, चमगादर,
जाग्रत रहते भूत निशा मे, तरुसेवी तापसवर!
गरदन मटका हिला करट, कुछ विस्मित, कुछ चिन्तनपर,
एक चक्षु को पलट, दूसरे लोचन पुट मे सत्वर!

मैने कहा, स्पष्ट भाषी, तुमको कहने मे क्या डर?
यह महत्व का प्रश्न, लोक जीवन है इस पर निर्भर!
कॉव कॉव कर कहा काक ने ग्राम्य भणिति मे निश्चय,
काम, काम है तापो का कारण, था उसका आशय!

मैंने पूछा, मोह काम से पीड़ित जग निसंशय,
किन्तु, कौन पा सकता, बलिभुज् ! अमिट कामना पर जय ?
पक्ष-पात कर उड़ा विहग, काले प्रकाश से भर मन,
समाधान मेरी शका का उस तम मे था गोपन !

पक्षपात है नाम कामना का, जो दुख की कारण,
उज्वल सभी प्रकाश नही रे, काला नही सभी तम !
इस प्रकाश के शिखी पिच्छ से रूप अनेक मनोहर,
जिनमे लिप्त मनुज मन रहता लोभ स्वार्थ हित तत्पर !
अंधकार के रूप विविध, घनश्याम इन्द्रधनु जलधर
उर्वर रखते भू को, मोहक काली कोयल के स्वर !

ज्योति हंस औ तमस काक इन दोनो से जो है पर
उसी सर्वगत पर जो केन्द्रित रहे मनुज का अंतर,
हस रहे जग मे, मयूर औ' वायस रहे परस्पर !
सब के साथ अपाप विद्ध, स्थित प्रज्ञ रहे जग मे नर !

श्वेत कृष्ण मिल, रंग पूर्ण नित धरे जगत जीवन पथ,
पक्षपात से रहित मनुज हो विरत, विश्व मे भी रत !
किया हृदय ने ज्योति श्याम परभृत् का मन मे स्वागत,
दीप तले के तम के छाया खग, तुम दीप शिखावत् !

संक्रमण

खो गया जीवन रस,
रहस स्पर्श,
सृजन का मुक्त रभस
निखिल हर्ष !

रह गया इतिहास, विज्ञान,
दर्शन, सहस्र शास्त्र,
सभ्यता के ब्रह्मास्त्र !
खो गई एकता,
व्याप्त है अनेकता !

रह गई जाति पाँति,
देश प्रात,
युगो की रीति नीति,
रूढि भ्रात,
स्वर्ग नरक ईति भीति,
जन अशात !

खो गई मानवता,
खो गई वसुधरा !
नही सत्य सहृदयता,
नही मही विश्वम्भरा !

आओ हे नव नूतन,
स्वर्ण युग करो सृजन !
एक हों भू के जन
नव्य चेतना के कण !

देशों से धरा निखरे,
जुड़ें मनुज उर बिखरे !
दृष्टि सौन्दर्य जड़ित,
अधर हों हृदय स्मित !

आत्मा आए सम्मुख,
महिमान्वित मानव मुख !
आओ हे नव नूतन,
मानव हों भू के जन !

नारी पथ

कितने रेखा स्मिति अधर
प्रथम मधु पल्लव के,
प्रणय रुधिर रँगे अधर
करते मृदु मर्मर !

चपल मौन मुखर नयन
नील पद्म स्नेह सर के,
प्रीति किरण, मुग्ध नयन
करते शत वर्षण !

कितनी वेणियाँ लोल
लोटती पीठों पर,
खुली बँधी फूल गुँथी
सुरभित तम निर्झर !

नवल मुकुल सृष्टि अग,
चकित मृग ग्रीवा भग,
पुष्प शिखर से उरोज,
चारु हस, छबि सरोज,
रूप की प्ररोह बाँह
प्राण कामना प्रवाह, .

सचमुच,—
एक अगना से सुभग
लगता अगो का जग,
शोभा सरसिज पग !

स्वर्ण किरण

सौ सौ उगते शशि मुख
देते आँखों को सुख,
मिटा मोह निशा दुख !

ममता अधिकार नही ,
मोह तिरस्कार नही ,
चुबन या परिरभण !

केवल प्रतीति प्राण
हृदयो का प्रीति दान ,
युवक युवती समान !

अवयव कुवलयित सृष्टि
मोहित करती है दृष्टि !
जिस पर मानव भविष्य
करता नव किरण वृष्टि !

नील धार

(विश्व यमुना)

ओ नीलधार, अति दुर्निवार !

रवि शशि से स्वर्ण रजत चुबित ,
जीवन के स्वप्नो से ज्योतित ,
तुम गलित नीलिमा सी बहती
आकाक्षा का हर अधकार !

प्राणो के सुख से आदोलित ,
चिर रभस कामना से मुखरित ,
युग युग की विश्व चेतना तुम ,
उच्छ्वसित उरोजो का उभार !

फेनों के क्षण कर स्वप्न ग्रथित ,
दिशि के तट जीवन से प्लावित ,
तुम अतल अकूल तरगित नित
ज्यो स्वर्ग मर्त्य के आर पार !

ऋजु कुचित जग जीवन का मग ,
धर ऊर्ध्व विषम सम नर्तित पग ,
नभ की हर काति, मरुत का जव
भू पर करती प्रणयाभिसार !

जीवन के रागो से रजित ,
चिर गूढ स्पृहाओं से मथित ,
अकथित अतर आवेशों का
उद्वेलित तुम मे मर्म - भार !

असफल आशाओं से पा बल,
स्तंभित अभिलाषा से चंचल,
तुम हृदय ग्रंथियों की प्रवाह
सवेदन शील, द्रवित अपार !

सद् असद् तुम्हारे है दो तट,
तुम ज्योति तमस की जीवन पट,
दुख सुख में रो हँस, सुख दुख को
मज्जित करते गति औ' प्रसार !

गंगा की दुग्ध धार पावन
तुमसे मिल बनी पूर्ण, शोभन,
वह प्रभु के श्रीपद से नि.सृत,
तुम विश्व-श्याम उर से उदार !
ओ नीलधार, चिर निर्विकार !

युग प्रभात

स्वर्ण किरण, स्वर्ण किरण,
विचरती धरती पर
स्वप्नो की तूलि धर
चेतना रजित कर
जगती के रजकण !

स्वर्ण किरण, स्वर्ण किरण,
नभ से परियों सी उतर
स्वप्न नयन कर अतर,
जीवन सौन्दर्य के
बरसाती स्मित निर्झर !

स्वर्ण किरण, स्वर्ण किरण,
हँसमुख, आदित्य वरण,
धरती धरती पर चरण
हरती चिर छायावरण
चेतना पथ से विचरण
करती मंगल वितरण !

धरा स्वर्ग-रक्त स्नात,
प्रस्फुटित नव प्रभात
चेतना जलजात !
विश्व सरसी मे नवल खोल किरणो के दल
फूटता युग प्रभात
शोभित कर दिङ्मंडल !

सविता

लो, सविता आता सहस्रकर,
सविता, उज्वल व्योम पृष्ठ पर,
नव्य रश्मियों से ज्योतिर्मय,
अंतरिक्ष को आलोकित कर!
सप्त अश्व से सप्त लोक कर
पार, वेग मे दिव्य तेज भर,
वह महेन्द्र आ रहा घिरा, निज
किरणों से त्रिभुवन का तम हर!

उठो, मनुष्यो, जागो, करो
उषाओं का दिव मे अभिवादन,
मार्ग उन्होने खोल दिया
सविता का, जो ज्योतिर्मय पूषण!
अंधकार हट गया, प्राण औ'
जीवन नव हो रहे प्रवाहित,
वह महेन्द्र आ रहा, रश्मियों से
आभृत, प्रकाश से आवृत!

अंधरूढि पर चलने वाले
आज पा गए है अभिनव पथ,
नव प्रकाश का सूर्य उन्हे
मिल गया, [illegible]ता सप्त अश्व रथ!

स्वर्ग ओर चिर धावमान, उस
दिव्य हस के पख ज्योतिमय
फैले हुए सहस्त्र दिनों से,
बढता ही जाता वह निर्भय !
सब भुवनो को देखता हुआ,
देवो को ले हृदय मे सकल,
व्याप्त सर्व लोको मे वह
फैले अपार पखो मे दिशिपल !

हाउ हाउ, वह स्वर्ण पुरुष,
वह ज्योति पुरुष मै हूँ अजर अमर !
झरते सप्त धार सोने के
सतत मातरिश्वा से निर्झर !

श्री अरविन्द दर्शन

ज्योति श्री अरविन्द, चेतना के दिव्योत्पल,
पूर्ण सच्चिदानद रूप शोभित स्वर्णोज्वल!
अति मानस मे विकसित तुम आलोक हसित दल,
ओतप्रोत जिसमे असीम आनद रजत जल!

स्तर पर स्तर कर पार चेतना के, योगेश्वर,
स्वर्णारुण से नव्योदित तुम चिदाकाश पर!
मानव से ईश्वर, ईश्वर से मानव बन कर
आए लौट धरा पर, ले नव जीवन का वर!

तुम भविष्य के दिव्यालोक, देव, अति जीवित,
मानव अतर तुमसे उच्च, अतल, अति विस्तृत,
रुद्ध द्वार कर मुक्त हृदय के, चिर तमसावृत,
अतर्जीवन सत्य कर दिया तुमने ज्योतित!

अधिमानस से भी ऊपर, विज्ञान भूमि पर,
तुम अध्यात्म तत्व के हिमगिरि से स्थित निर्भर!
ज्योति मूर्त चेतना ज्वलित हिम राशि सी निखर
मर्त्य स्वर्ग के पार उठाए सत्य के शिखर!

एक स्तभ उपनिषत् ब्रह्म विद्या के निश्चय,
ज्योति स्तभ दूसरा देव का शब्द असशय,
दिव्य चेतना सेतु ऊर्ध्व जिन पर ज्योतिर्मय
आर पार भव जीवनाब्धि के, अति मानव, जय!

किया वेद वेदागो का जब तुमने मथन,
हुए प्रकाशित तत्व, जगा मत्रो मे जीवन,
परम व्योम से तुम्हे, ऊर्ध्वचित्, ध्यान मग्न मन,
विद्युत् लेखा तुल्य ऋचाओ का हुआ स्फुरण !

स्वर्ण नील के मध्य, रजत की अनिल मे सुघर,
छोड दिव्य स्वप्नो की रत्नच्छाया भास्वर,
स्वर्ग धरा पर लाने, आए स्वय तुम उतर
जन मगल हित पार्थिवता का भार वहन कर !

स्वर्ग और वसुधा का करने स्वर्णिम परिणय,
इन्द्रचाप का सेतु रच रहे तुम ज्योतिर्मय,
नृत्यशील चिर हरित यौवना भू पर छबिमय
चिर अनंत की अमर वृत्तियाँ बोकर अक्षय !

अग्नि विहग से, स्वर्ण शुभ्र तुम खोल दिव्य पर,
विचर रजत नीहार शाति मे दिशि पल के पर,
प्रसव व्यथित वसुधा हित लाए अखिल शोकहर
रश्मि कलश मे दिव्य प्रीति की स्वर्ण सुरा भर !

नील शकुनि, तुम गाते देवो स्वर्दूतो हित;
चिदानद के अग्नि बीज भू पर झरते स्मित !
देश काल से परे कौन वह व्योम दुख रहित
शाश्वत सुख का हर्ष जहाँ से लाते तुम नित !

कैसा वहाँ प्रकाश, शाति, आनद चिरतन ?
जहाँ सच्चिदानद स्वय करते सहज सृजन !

उठा सत्य निज आनन से हिरण्य अवगुठन
जहाँ सूक्ष्म सुदरता का सजती सम्मोहन!

छायाभा से रचित वहाँ क्या सप्तदल भुवन!
काल दिशा को लिए अक मे करता नर्तन!
जहाँ स्वयं प्रभु रहते कैसा वह परम गगन!
जहाँ अनिर्वचनीय अमित आनद का स्रवण!

गूढ तमस मे, जड़ मे हो चित् शक्ति तिरोहित,
अन्न प्राण मन मे फिर कैसे हुई प्रस्फुटित,
कवि ऋषि, तुमने सूक्ष्म दृष्टि से कर ज्यो चित्रित
रहस शक्ति से निखिल सृष्टि फिर कर दी विकसित!

खोल अशेष रहस्य सृजन का तुमने गोपन
दिया विश्व को नव जीवन विकास का दर्शन!
ज्योति चिह्न जो छोड़ गए भू पर प्रबुद्ध जन
सूचित उनसे अति मानव का पुण्य आगमन!

ऊर्ध्व चेतना का हो समदिक् मूर्त सचरण
धरा स्वर्ग के ज्योति छत्र सा भेद दिव्य मन,
बहिरंतर जीवन का कर तुम, देव, उन्नयन,
दिव जीवन का धरती पर कर रहे अवतरण!

युग युग के पूजन आराधन जप तप साधन
आज कृतार्थ अखिल आदर्श शास्त्र नय दर्शन,
मनुज जाति का सफल सकल जीवन सघर्षण
पूर्ण आज प्रभु तुममे दिव्य देह धर नूतन!

जल जीवन मे मच्छ, कच्छ तुम कर्दम मे बन,
भू जडत्व मे शूकर, वनचर मे नृसिह तन,
आदि मनुज वामन, शूरो मे राम परशुपण,
मर्यादामय राम, विश्वमय बने कृष्ण घन!

आज लोक सघर्षो से जब मानव जर्जर,
अति मानव बन तुम युग-सभव हुए धरा पर!
अन्न प्राण मन के त्रिदलो का कर रूपान्तर,
वसुधा पर नव स्वर्ग सँजोने आए सुदर!

छूपाते है पख कल्पना के, न पद कमल,
विकसित जो अतर जल मे जाज्वल्य ज्योति दल,
घेरे तुम्हे जननि का ज्योतिष्मत् चिन्मडल,
मुग्ध चमत्कृत चक्षु वाक् मन पा जाते फल!

दूत दिव्य जीवन के, दिव्य तुम्हारा दर्शन,
अति, मानस का स्पर्श प्राण मन करता चेतन!
मानव उर प्रच्छन्न तुम्हारा नव पद्मासन,
तन मन प्राण हृदय ये तुमको, देव, समर्पण!

स्वर्णोदय

(जीवन सौन्दर्य)

(१)

जयति, प्रथम जीवन स्वर्णोदय ,
रक्त स्फीत, लो, दिशा का हृदय !
काल तमस व्यवधान चीर कर
किसने मारा यह स्वर्णिम शर ?
जय, अमर्त्य जीवन यात्री, जय !

देखो, कोमलार्त कर क्रदन
किसने जग मे किया आगमन !
(यह क्या भू का रुदन सनातन ?)
पलको मे जग उठे निमिष क्षण ,
स्तब्ध हृदय मे दिशि का स्पंदन !

गुहा वद्ध चिर स्रोत हो स्खलित
जीवन पथ मे हुआ प्रवाहित !
मुक्त अरूप रूप धर सीमित ,
श्वासो से कर गगन तरगित !

मगल गायन !
मंगल वादन !
क्यो न मनाएँ जन्मोत्सव जन !
धन्य आज का पुण्य दिवस क्षण ,
फिर अमर्त्य ने धरा मर्त्य तन !

स्वागत, स्वागत,
प्रयत नवागत,
हो प्रशस्त तेरा जीवन पथ,
जग के शूल फूल हो अभिमत,
प्रिय शिशु, तू हो पूर्ण मनोरथ !

ओ मा, वह रोता है, उसको स्तन्य पिलाओ,
वह अशक्त असहाय, उसे निज अक लगाओ !
कैसे पार करेगा दुर्गम जगती का मग
वह निर्बल निर्बोध पथिक, वह पख हीन खग !

लोरी गाओ, लोरी गाओ,
फूल दोल मे उसे झुलाओ;
निदिया की चल परियो, आओ,
मुन्ना का मुख चूम सुलाओ !
स्वप्नो के छाया 'पखो को
लालन के ऊपर सिमटाओ !

चद्रलोक की परियो, आओ,
स्मिति से सुधा अधर रँग जाओ,
मलय सुरभि की चचल परियो,
साँसो से आँचल भर लाओ !
जुगनू बरसा, वन की परियो !
झिलमिल कर पलके झपकाओ,
मेघो की मृदु रिमझिम परियो,
लालन का गा हृदय रिझाओ !

अहरह उर कंपन मे दोलित,
मर्म स्पृहा की मूर्ति देख स्मित,
मुग्ध नव जननि, बलि बलि जाओ,
लाड लुटाओ, प्यार लुटाओ,
लोरी गाओ !

स्निग्ध पूस का रजतातप आशीर्वाद सा,
बरस रहा पृथ्वी पर स्वर्गिक स्पर्श ह्लाद सा !
शात प्रकृति मुख, सौम्य दिशा स्मिति, नील विहायस
शीतलोष्म पखो के सुख मे सिमटा सालस !
नलिनी उर मे लेटा हिमजल
बाल चेतना सा तारोज्वल,
हँसमुख, निर्मल, चंचल !
लो, वह नटखट पॉव चलाता,
कौन उसे बढना सिखलाता ?
अब तक केवल क्रंदन
जिसका था संभाषण,
वह अस्फुट स्वर मे तुतलाता !
दुधमुँही सरल मधुर मुसकान
न जाने कहती किन अनजान
रहस्यो के आख्यान !
कौन अप्सरियाँ आ चुपचाप
कर रही उससे मौनालाप,
फूटती स्वप्न सरित स्मिति आप !

नाम रूप के जग को, केवल
वह चितवन स्पर्शो से प्रतिपल
अंकित करता उर मे कोमल !
तारांओ से भरा गगन।
स्वप्नों के वन सा सघन ,
हृदय मे उपजाता गोपन संवेदन !

अब, चंदा ने चाँदी की नैया मे मोहन
बिठा लिया ज्यों लालन का मन ,
पलने में केवल हिलता डुलता तन !

दीप शिखा के लिए वह मचल
नचा रहा निज कोमल करतल !
चूँ चूँ करती चिड़िया सुंदर
फूल पाँखुड़ी उड़ती फर् फर् ,
उन्हे बनाने को निज सहचर
पास बुलाता वह इंगित कर !
सोच रहा ज्यो एकटक नयन ,
मौ माखी क्या कहती भन भन
कानो मे भर गुंजन !

मर्मऽर, मर्मऽर ,
तरुओ के चल पत्र रहे झर !
विरल टहनियो की जाली से
लगता मुक्त प्रशस्त दिगतर !

यह लो, नव शिशु सा ही सुंदर
निखिल विश्व बन गया दिगंबर ;
मांसल नवल पल्लवों से वह
वेष्टित होगा सत्वर !

कहाँ जरा है ? कहाँ रे मरण ?
सृजन शील जग का परिवर्तन !
कौन, कहाँ से आए ये क्षण पथिक,
कहाँ जा रहे निरंतर,
पेड़ों के अगणित पीले पत्ते उड़ उड़ कर ?——
धरती इनसे क्यों न गई भर !
कब से झर झर
चुपके हँस कर
ये किस पर हो रहे निछावर ?
क्या ये उड़ते पत्ते केवल ? कौन यहाँ दे उत्तर !

यह अनंत यात्रा का रे पथ,
शिशु अनंत का यात्री शाश्वत ;
वह अनादि से नित्य नवागत,
अपने ही घर का अभ्यागत !
सूर्य चंद्र उसके ही लोचन,
श्वसन उसी के उर का स्पंदन,
उसका आत्म प्रसार दिशा क्षण,
आदि सृष्टि का कारण,
शिशु अनंत का पाथ चिरंतन !

क्रम विकास के पथ से निश्चित
विश्व नीड़ कर अपना निर्मित,
जननि जनक में स्वयं विभाजित
वह अवतरित हुआ या विकसित?
कोटि योनि औ' कोटि जन्म तर
विविध भ्रूण स्थितियों से बढ़कर,
दिव्य अतिथि वह मनुज देह धर
आया फिर से मधुर मनोहर!

देखो, देखो आँखें भर,
कैसा रहस्यमय ईश्वर!
देखो हे आँखें भर
कैसा सुंदर ईश्वर!

(२)

रंग रंगों में रही पुकार
पल्लवित विश्व प्रकृति की डाल,
गहन नव जीवन ज्वाल!
किशोरी औ' किशोर सुकुमार
खेलते' यह प्रिय लीला काल!

न अब वह प्रथमि गहन शैशव,
जागा उर में स्वभाव वैभव,
[illegible] [illegible] कहता कुछ गोपन
[illegible] [illegible] आरोहण!

अभी मन बना न नारी नर,
सखा, भइया बहना दो जन!

खेल कूद अब इनका जीवन,
गोद बन गई जग का आँगन;
कौतूहल से भरा मुकुल मन,
खोज रहे कुछ उत्सुक लोचन!

जीवन स्रोत बह चला कल कल
जग मे भर हँसमुख कोलाहल,
नवल विश्व रे नवल धरातल,
फुल्ल नवल नभ का नीलोत्पल;
निखिल पुरातन नवल, चिर नवल,
जीवन स्रोत बह चला कल कल!

आ, समीर किस सुख से चचल,
उड़ता यह क्या मा का आँचल!
लोट रही है लहरे प्रतिपल
उछल रहा किशोर उर कोमल!
छू छू कर कैशोर पग चपल
हँस उठता पुलकित दूर्वादल!

कहाँ गया अब शैशव का घुटनो बल चलना,
वह चंदा के लिए मचलना?
कहाँ छिपा लकड़ी का तू तू,
कहाँ भगा लाठी का घोड़ा?

वह कागज की नाव
जिसे शिशु ने जीवन सागर मे छोड़ा !

उसे याद, जब प्रथम चरण धर
खड़ा रह सका था वह क्षण भर,
विजय गर्व औ' तडित हर्ष जो
सहसा मृदु उर में था दौडा ?
कब भागा लकडी का तू तू,
कब छूटा लाठी का घोड़ा !

बाल कल्पना का वह जग न रहा अतिरजित,
बचपन के साथी चिर परिचित
गुड्डे गुड़िया, मधुर खिलौने थे जो जीवित,
आज धूल मे पड़े काठ के सब हाथी घोडे मृत !

उड़ते पत्ते बनते थे तब उड़ती चिडियाँ,
ओने कोने मे छिपकर रहती थी परियाँ,
आस पास के झुरमुट ठूँठ सभी थे हौवा,
नित्य डाकिया बन आता आँगन का कौवा ;
जादूगर का खेल जगत था रहस भावना कल्पित,
पलक मारते ही उगता था पेड़ आम का निश्चित !

चहक रहे अब मुखर बाल खग,
रोके रुकते नही चपल पग !
सहज हर्ष से उमँग रहे अँग,
लड़भिड़ रो हँस रहते ये सँग !

इनके हास लास रगो से ,
नव अंगों से, नव भंगों से ,
रंग प्राण बन जाता है फिर क्षण भगुर जग जीवन का मग !

संभव अखिल असंभव मिलकर
कौतुक से भर देते अतर ,
हास रुदन सी ही घटनाएं
आती औ' जाती टिक क्षण भर !
सुन पड़ता, लो, दूर कठ स्वर——

डम डम डमक, कलंदर आया !
बंदर घुड़की छोड़ो भइया, डमरु जगाया !
सध्या बूढा ने सूरज का गेद छिपाया ,
दादी ने आँगन भर मे सेदुर बिखराया !
ऐंठ दिखाते थे सब को अकड़ू बधवा जी ,
गीदड़ ने अपनी चालो से खूब छकाया !
खेल कूद मे रहे छलॉगे भरते दिन भर ,
कछुए ने खरहा बच्चू को सबक सिखाया !
हॅसते थे बन के राजा छोटी चुहिया पर
फंदा उसने काट जाल से उन्हे छुड़ाया !
बाल न बॉका कर पाए राजा बाबा का ,
अटी मे वह सीग स्यार का था रख लाया !
कभी कबड्डी नही खेलते थे सँग रामू ,
इम्तहान मे तभी फिसड्डी नबर पाया !
डम डम डमक, कलंदर आया !

सीख रहे ये पग पग पर जाने अनजाने ,
उत्सुक यह विस्तृत जग इनको पाठ सिखाने ,
नित्य बढ रहे मन मे ये निर्बोध सयाने !

हृदय क्रिया थी जिसकी मृदु स्मिति
क्रदन ही वाणी की अथ-इति ,
उस जीवन के मास पिंड मे
कैसे फूटी जग की भाषा ?
साँसो के सूने उर मे
कैसे आई आशा, अभिलाषा ?

स्पर्श जगत मे था जो जीवित ,
स्वाद मात्र से बस कुछ परिचित ,
स्वप्न लोक के उस वासी मे
कैसे, जागी बुद्धि भावना स्मृति जिज्ञासा ?
कौन मिटाए ज्ञान पिपासा !

बोध निहित था क्या उर भीतर ,
अथवा व्याप्त विश्व मे बाहर ?
छिपा बिन्दु मे था क्या सागर ,
बाह्य परिस्थितियो पर शिशु-विकास या निर्भर ?
बढ़ते या वे बहिरंतर की प्रतिक्रियाओ से लोकोत्तर ?
कही नही क्या सम्यक् उत्तर !

देख चुके ये शरद पच दस ,
शिशिर वसत ग्रीष्म हिम पावस ;

उदित अस्त अब होता दिनकर,
घटता बढ़ता रवि स्मित हिमकर ;
स्वप्नो का तारापथ सुदर
ज्वलित ज्योति पिडों से भास्वर !

राहु केतु से चंद्र रवि ग्रसित
होते भू शशि गति से निश्चित !
दिवस पाख औ' मास बदलते
ऋतु संवत्सर !

कथा इन्द्र की इन्हे सब विदित
इन्द्र धनुष क्यों सप्त रंग स्मित ;
तड़िल्लता क्यों खिलती कुछ क्षण,
घन घमंड क्या करता घोषण !
वाष्प पंख के बादल जलधर
बरस बरस धरती पर उर्वर
हँसमुख हरियाली देते भर !

परियाँ हुई अदृश्य, बद अब दंत कहानी,
अब वे राजकुमार न अब वे राजा रानी !
अब भूगोल गणित इतिहास ग्रथित पृष्ठो पर,
चित्र प्रकृति से विस्मित चितवन गड़ी निरंतर !
चपल विश्व के रूप रंग बन काले अक्षर
रेग पाँति मे रहे चीटियो से हिलडुल कर !
जाने बाहर दृष्टि दौड़ जाती कब चंचल,
राजधानियाँ हो जाती भूतल से ओझल !

नीले नभ पर, गिरि प्रांतर पर, खग नीड़ों पर
छाया पथ से स्वप्न क्षितिज मे उडता अंतर।
चिड़ियों के पंखे, हिम के मोती बटोर कर
झरनो के फेनों सँग हँसता कलरव से भर।

क्या है ये इतिहास, युद्ध सम्राट्, प्रथित जन!
विविध,शास्त्र, विज्ञान। इन्ही का रे गत जीवन।
इनके आविष्कार सभी, इनके अन्वेषण,
युग युग की शैशव अनुभूति वहन करता मन।

फिर से ये करते अतीत का सिहालोकन,
कहाँ आज है विश्व! कहाँ अब मानव जीवन?
किन तंत्रो से भू पर जीव नियति प्रतिपालित?
किन मूल्यो से जीवन की इच्छा परिचालित।
किन आदर्शों से मानव भविष्य हो शासित?
किस प्रकार हो विश्व सभ्यता संस्कृति विकसित?

रहस स्पर्श से अब अनजाने
होता रह रह हृदय उच्छ्वसित।
किसी रंगिणी का चल अचल
उड़ता मलयानिल मे पुलकित।
रग भावना से अंतर की
हो जाता सहसा जग रजित,
स्वप्नो की पंखड़ियाँ हँस हँस
नयनो को कर देती विस्मित।

(३)

स्वर्ण मंजरित आम्र कानन,
कोकिला करती कल कूजन!
सूँघ चख चूम फूल आनन,
झूम मधुलिह् भरते गुजन!
आज भव वारिधि उद्वेलित
नभो नीलिमा बनी विस्तृत,
डोलता मारुत रोमांचित
साँस पी फूलों की सुरभित!
रजत किंकिणियो सी कल कल
लहरियाँ थिरक रही चंचल,
कँप रही बल्लरियाँ कोमल
खोलती कलियाँ वक्ष नवल!

रंग प्राणो का स्वर्णिम. लोक
कहाँ था यह अदृश्य चुपचाप,
हँस उठा, इन्द्रधनुष मे आज,
हृदय का छाया वाष्प कलाप!
बज उठा जीवन मे मधु छद
किसी की सुन नीरव, पद चाप,
भाव गरिमा से भरा अनंत
मुखर स्वर से अब मौनालाप!

युवक नव युवति विचरते आज,
मर्म मे स्पृहा, दृगो मे लाज;

नही कैशोर भीति का भाव,
आज उनसे चरितार्थ समाज!
बने वे नर नारी मोहन,
न अब जीवन रहस्य गोपन,
न परियाँ देती शिशु को जन्म,
सृष्टि मे निहित जनन पावन!

नीलिमा क्यों नीरव निस्तल,
स्रवंती बहती क्यो कल, कल,
ज्ञात अब, खिलते क्यो कुड्मल,
गधवह फिरता क्यो चचल!

न रोके रुकते चपल नयन,
मीन तिरते, उडते खंजन,
अधर से मिलते मधुर अधर,
मुग्ध कलि अलि करते चुबन!
बॉह यदि भरती आलिगन
लताओ से लिपटे तरुगण,
प्रबल रे फूलो का बंधन,
अमिट प्राणो का आकर्षण!

आज भ्रू लतिकाओ मे भग,
प्रतनु तन-शोभा प्रीति तरग,
गढ़े किस शिल्पी ने ये अग,
निछावर निखिल प्रकृति के रग!

स्पर्श मे बहती प्राण तड़ित
स्वत तन हो उठता पुलकित ,
हृदय स्वप्नों से जग रंजित
उषा अब इन्द्र धनुष वेष्टित !

सहज चार आँखे होती, अपलक रह जाते लोचन ,
नव प्रवाल अधरों मे बहती मदिरा ज्वाला मादन !
प्राणों की चिर चाह फूट बनती पुलकों के बधन ,
कौन भूल सकता है रे नव यौवन का सम्मोहन !
कैसे उर कामना स्वर्ण कलशों मे युगल गई भर ,
कहाँ नयनिमा ने पाए ये फूलों के मादक शर ?
यह लज्जा सज्जा सुषमा मधुरिमा कहाँ थी गोपन ,
नव यौवन औ' प्रथम प्रणय औ' मुग्धा तरुणी का तन !

कौन बाँध सकता उद्दाम अजस्र वेग निर्झर का ,
कौन रोक सकता अबाध उद्वेलन रे सागर का !
मदोन्मत्त यौवन का, मेघों का दुर्धर आलोड़न ,
चकित नही कामिनी दामिनी करती किसके लोचन !

सरित पुलिन अब लगते शोभन ,
बह जाता धारा के सँग मन !
मधुर, मौन सध्या का आँगन ,
प्रिय, स्वप्नो मे शयित निशि गगन !
गुंजन कूजन गंध-समीरण
सब मे मर्म मधुर सवेदन ;

तरुण भावनाओ से रजित
मुकुलित नव अगो का उपवन !
स्वर्ण नील भृगों से झंकृत, कोकिल स्वर से कीर्तित !
अपलक रत्न-स्वप्न मधु वैभव मन को करता मोहित !
ताराओ से शत लक्षित, ज्योत्स्ना अचल मे वेष्टित
उदय हृदय मे होता फिर फिर लेखा शशि मुख परिचित !
शरद निशा आती सलज्ज मुग्धा सी शकित ,
मुक्त कुंतला वर्षा तनु चपला सी कपित ;
सुरभित ऊष्मा बेला कलि स्रक् से उर दोलित ,
लिपट मधुर हिम जाती तन से आतप सी स्मित !

खुल पडता उर का वातायन
बहती प्राण मलय चिर मादन ,
कही दूर से आता भीतर
प्रणयाकुल पंचम पिक गायन !
आओ हे चिर स्वप्न सखी, आकुल अतर मे आओ ,
फूलों की नव कोमलता मे जीवन को लिपटाओ !
इन प्रिय स्नेह सरो मे अपलक शरद नीलिमा जागृत ,
चपल हस पखो से चुबित सरसिज श्री बरसाओ !
इस प्रवाल के प्याले की मधु मदिरा, सखि, उर मादन ,
तुहिन फेन सी सस्मित प्रीति सुधा निज मुझे पिलाओ !
सुरभित साँसो के उर मे कर मर्म कामना दोलित
फूलों के मृदु शिखरो पर प्राणो के स्वप्न सुलाओ !

इन मासल सुवर्ण झरनो से लिपटी विद्युत् लपटे ,
प्रणय उदधि मे प्राणो की ज्वाला को अतल डुबाओ !
लेटा नव लावण्य चाँदनी सा बेला के वन मे ,
खिलती कलिकाओ की शोभा कोमल सेज सजाओ !
स्वप्नों की पी सुरा आज यौवन जागे विस्मृति में
चंचल विद्युत् को सलज्ज ज्योत्स्ना के अक लगाओ !
आओ हे प्रिय स्वप्न सगिनी, आकुल उर मे आओ !

पति पत्नी अब बने प्रणयिजन ,
निखिल प्रकृति करती अभिनंदन !
अह, कैसा निष्ठुर निर्मम जग
सन्मुख क्यो जीवन सघर्षण !
हृष्ट पुष्ट नव युग्मो का तन ,
रुधिर वेग मे झंकृत जीवन !
आत्म भाव से विस्तृत लोचन ,
शौर्य वीर्य से विकसित नव मन !

नही मानता उर दुबिधाएँ बाधा बधन ,
वह विशंक, निर्भीक, सह्य उसको न नियत्रण !
चिर अदम्य उत्साह हृदय मे स्पदित प्रतिक्षण ,
यह यौवन की आशा अभिलाषा का प्लावन !

अह, क्या करती रही पलित पीढियाँ आज तक ,
रक्त पंक जन धरणी का इतिहास भयानक !
रोग शोक, मिथ्या विश्वास, अविद्या व्यापक ,
नंगे भूखे लूलों का जग हृदय विदारक !

कौन रहे इस क्रूर सभ्यता के संस्थापक ,
यह जन-नरक कलंक मनुजता का, भू पातक !

बदलेंगे हम चिर विषण्ण वसुधा का आनन
विद्युत् गति से लावेगे जग मे परिवर्तन !
क्यो न मजरित युवको का हो विश्व संगठन ,
नव यौवन आदर्शवादिता अरे न नूतन !
क्या करते ये धनकुबेर, पडित, वैज्ञानिक ,
दिशाभ्रात क्यो हो जाते राष्ट्रो के नाविक !
ज्ञात नही क्या लोक नियति है आज भू पथिक ,
वर्ग राष्ट्र से लोक धरा का श्रेय है अधिक !
दिवस ज्योति सा सार सत्य यह गोचर निश्चित
मनुष्यत्व है रीति नीति धर्मो से विस्तृत !
सस्कृति रे परिहास, क्षुधा से यदि जन कवलित ,
कला कल्पना, जो कुटुब-तन नग्न, गृह-रहित !

आओ, मुक्त कठ से सब जन
भू मंगल का गावे गायन ,
वदे मातरम् !
जन धरणी जन भरणी
रत्न प्रसवनी मातरम् !

नृत्य हरित पिक कूजित यौवन ,
अनिल तरगित उदधि जल वसन ,

ज्वलित सूर्य शशि छत्र नत गगन ,
प्रणयाकांक्षी स्वर्ग चिरंतन ,
वंदे मातरम् !
बजे क्रांति तूरी जग मादन ,
कुडुम कुडुम हो जय दुंदुभि स्वन ,
जीवन हित मानव वरे मरण
मृत्यु अंक मे भी गावे जन ,
वंदे मातरम् !
जाति वर्ण के टूटे बंधन ,
रूढ़ि रीति से मुक्त बने मन ,
दैन्य दुरित के हटे तमस घन ,
स्वर्ण प्रभात जड़ित गृह प्रागण !
वंदे मातरम् !
दिशा लोक श्रम से हों हर्षित ,
काल विश्व रचना मे योजित ,
भव सस्कृति मे देश हो ग्रथित ,
जन संपन्न, जगत मनुजोचित ,
वदे मातरम् !

स्वर्ण पोत के मौर न अब, फूलो की ज्वाला के वन ,
कितने चुँवे झरे धरती पर, झंझा का भव कानन !
लदी फलो से जीवन डाले, रस मे सब रँग गोपन ,
विश्व प्रकृति का रे अपार अक्षय वैभव दिङ् मोहन !
भू की रज को कर कृतार्थ बीता निदाघ अब भीषण ,
तिग्म करो से खीच सिन्धु पलनो से वाष्पो के घन !

तप्त श्वास सा ग्रीष्म पवन भी शांत हुआ झुलसा तन ,
विकसित वर्धित परिणत कर पुष्पित वसंत का यौवन !

वर्षा आई, धूम्र नील नभ मे छाया घन घर्षण ,
तीव्र लालसा तड़ित जगी सोई, कर गर्जन तर्जन !
मधु मरद से रजित भू का गर्भ हुआ फिर उर्वर
नव प्रवाल प्रज्वलित तरु क्षितिज बना गाढ श्यामलतर !
नृत्य तरंगित हुए स्रोत नव, गए प्ररोह नवल भर ,
सृजन शक्ति ने अणु अणु मे ज्यों लगा दिए जीवन पर !
प्रणय गीत औ' जनन स्वरो से मुखरित हुआ दिगतर ,
जीवन की रिमझिम अजस्र रे ससृति की सावन झर !

पृथक् न अधिक रहा नारी जग
धरे पुरुष के सँग उसने पग ,
रग तरंगित जिसकी श्री से
कुसुमित सुषमित जग का मरु मग !
गुड़ियो के सँग प्रिय किशोर क्षण
बीते उर मे भर मृदु कपन ,
खीच कुसुम धनु तन, यौवन ने
किया रूप सम्मोहन वर्षण !

वक्ष श्रोणि ने बढ़, कटि ने छँट
सौष्टव रेखाएँ की रूपित ,
मुग्ध नयनिमा, त्रपा लालिमा ,
पद जडिमा ने तरुणी चित्रित !

शोभा कँपती लहरी सी उठ
हुई देह तनिमा में स्तंभित,
देख मुकर सी त्वक् में निज मुख
रही मधुरिमा छबि से विस्मित !
सुकुमारता व्रतति सी बढ़कर
अंगभंगि मे हुई प्रस्फुटित,
सुंदरता ही प्रीति तूलि से
बनी मोहिनी प्रतिमा जीवित !

हुए रूपसी के नव अवयव
यौवन के आतप से विकसित,
मधुर स्त्रीत्व मे धातृ कल्पना
सृजन कला के कर से मूर्तित !
जगा सलज चेष्टाओ मे अब
नव लीला लावण्य अकल्पित,
पलक भृकुटि अंगुलि चालन मे
छबि की दीप शिखाए कंपित !

तिमिर ज्वाल सा केश जाल घन
पृष्ठ देश पर हुआ प्रज्वलित,
आभा जीवी नयनो को कर
कोमल शोभा-तम से मोहित !
स्वप्नों से गुंफित यमुना जल
गाढ़ नील ज्यो हुआ तरंगित,

साँसें लेते फूलों के रँग
सौरभ की कबरी मे दोलित !

कांचन सी तप ज्वलित कामना,
ढली सघन जघनो मे दीपित,
बनी कठोर कुसुम कोमलता
श्रोणि भार मे हो चिर पुंजित !
बाहु लताएं फूल पाश बन
पुलको मे हो उठी पल्लवित,
कोमल करतल चचल पदतल
जीवन के पावक से रंजित !

रूप शिखा की श्री सुषमा से
हुए गेह आँगन आलोकित,
वातायन मे उदित शशि कला,
गृह गृह के गवाक्ष चिर शोभित !
कलि कुसुमों ने भूतल को रग
किया शोभना के हित सज्जित,
उर की साँसो मे बहने को
बना समीर गंधवह सुरभित !

ज्योत्स्ना सकुची, उषा लजाई,
रही तारिकाएँ ज्यो विस्मित,
स्रोत बहे, सरसी लहराई,
निखिल प्रकृति श्री हुई प्रभावित !

हृदयासन पर बिठा प्रेम ने
किया अमर स्वप्नों से पूजन,
समा स्वर्ग ने स्वर्ण घटो मे
स्वीकृत किया मर्त्य सुख बंधन!

दो टुकड़ो मे सिमट नीलिमा
रही मौन नयनों मे अपलक,
लजा अधर नव प्रणय वचन से
गए लालिमा से दुहरे रँग!
खिलती कलियों ने मार्दव भर,
कोकिल ने दे गीत स्रवित स्वर,
मोहक उसे किया ज्योत्स्ना ने
गोपन लज्जा मे वेष्टित कर!

मधु ने फूल ज्वाल से आवृत,
किया शरद ने लेखा मुख स्मित,
मणि मुक्ता भृत खनि सागर ने,
भू ने स्वर्ण रजत से झकृत!
जगा हृदय मे प्रीति दर्प नव
शत शत नयनो से हो लक्षित,
हाव भाव मे मधुर संयमन
शोभा तन सज्जा से सवृत!

तड़ित गर्भ, सुरधनु कबरी घन
ज्यो कृतार्थ होता भू पर झर,

मधुर अप्सरा बनी जनी अब
कुल प्रदीप से ज्योतित कर घर।
मातृ स्नेह बरसा नव शिशु पर
मुग्ध प्रणयिनी हुई निछावर,
सहधर्मिणी आज वह प्रिय की
सुख दुख की मत्री, चिर सहचर।

जननि जनक अब बने युग्म, जीवन को दे नव जीवन,
देख तनुज मुख आत्म भाव मे हुआ गूढ परिवर्तन।
जीवन का अमरत्व हुआ प्रत्यक्ष, पुरातन नूतन,
नित्य स्वप्न यौवन का सत्य हुआ, अवचेतन चेतन।
अतरतम मे आंदोलन, भावों मे जागा मथन,
धूम हट गया, मूर्तिमान हो उठे कार्य औ' कारण।
केन्द्र बन गया शिशु, ममत्व ने किया मूर्त तन धारण,
विस्तृत हुआ अहम्, निजत्व ने दुहराया नव जीवन।

अह, समानता जड जग की, मै हूँगा निखिल विलक्षण,
इन्द्रधनुष स्वप्नो का जीवन नीड रचूँगा मोहन।
हम तुम होगे, प्रिये, असाधारण, कहता था जो मन,
आत्मनिष्ठ वह यौवन सीख रहा अब आत्म समर्पण।
जीवन इच्छा, जीवन स्थितियो मे विरोध क्या शाश्वत?
दोनो मे ज्यो समाधान अब खोज रहा मन उद्यत।
बढा युग्म दायित्व, आज जीवन घर मे अभ्यागत,
बने उरोज पयोधर, दपति जगत कर्म मे अब रत।

चूम चूम शिशु का मुख पाते तृप्ति अमृत मदिराधर ,
मधुर प्रणय का कुंज बना गृह क्रदन कलरव से भर !
मलयानिल आ नवल मुकुल मुख का करती अब चुबन ,
सुधा स्पर्श शशि की किरणे अभिनव ही का अभिनदन !

भूल गया ज्यो प्रणय कलह मन ,
गूँज उठे उर के अरसिक क्षण ;
मूर्त पीठ पा मर्म स्पृहा ने
पुत्र स्नेह बन किया अवतरण !

रूप रग का रच सम्मोहन
सृजन शक्ति ने बाँधे थे मन ,
पलको मे शर, पुलक मे तड़ित ,
अधरों मे धर मदिरा मादन !
अब शिशु के अनुपम आनन मे
अतुल स्वर्ग का भर आकर्षण ,
परपरा मे गूँथ, अमर ज्यो
बना दिया उसने भगुर तन !

नही गणित से रे परिचालित
मानव जीवन का विकास क्रम ,
विजय पराभव संधि क्राति का
स्रवण शील मानव मन संगम !
मरती रहती बाह्य चेतना
आत्मा फिर फिर जगती नूतन ,

छोड़ जीर्ण केंचुल, नव सर्पित
होता उरग मनुज का जीवन !

(४)

शात रे ज्वलित तड़ित नर्तन ,
शांत अब धूम मेघ गर्जन !
शात चिर प्राणों का आवेश
बरस भू पर भर नव जीवन !

आज शुचि सौम्य शरद आनन ,
नीलिमा नत निर्धूलि गगन ,
चेतना सी ज्योत्स्ना से मुक्त
दुग्ध प्लावित जग के दिशि क्षण !
स्वच्छ आदर्शों से सरि सर ,
मनोदृग सी स्मित कुँई सुघर !
कृतांजलि अब प्रभात के पद्म ,
प्रौढता का भव रहा निखर !

रूप रगो का चित्र जगत
सिमट, धुल, हो अनुभव अवगत ,
विचारो भावों मे परिणत
नियम चालित लगता सतत !
भिन्न रुचि प्रकृति नही कल्पित ,
एकता मे वे आलिंगित ,

विकर्षण आकर्षण से नित्य
हो रहा जग जीवन विकसित !

नव कुमार का पकड़ मृदुल कर
टहला रही जनी आँगन पर ,
विस्मय औ' कौतूहल से भर
पूछ रहा वह प्रश्न प्रश्न पर !
कैसी हो किशोर की शिक्षा
हृदय पिता का अब चिन्तनपर ,
प्रिय अबोध चरणों मे जग के
काँटे गड़ न जाँय, वह कातर !

लाड़ प्यार भय वर्जन मे बढ़
पाँच बरस का अब प्रिय बालक ,
युवति युवक का प्रौढ़ शिशु हृदय
स्वतः सृष्ट जीवन संरक्षक !

घर आँगन पड़ोस बच्चो के शिक्षक सतत अपरिचित ,
रहन सहन मे जीवन शोभा अभी न भू के दर्शित !
क्यों न बने घर घर किशोर के हित जीवित विद्यायन ,
देवालय जग, जन मन दीपो से जीवन नीराजन !

ज्योति वृत्तियो मे मानव की शैशव उर हो संस्कृत ,
मूर्तित सामाजिक गरिमा से हो तारुण्य प्रभावित ;
अह, प्राणो के स्वप्न आज यौवन शय्या पर मूर्छित ,
मन स्वर्ग हम भू जीवन मे कर पाए न प्रतिष्ठित !

पक्व हो चुके वे जग का हिम आतप सहकर,
मोहित जीवन फल चख, तिक्त मधुर रस से भर!
भ्रमण कर चुके भू के जन कुसुमित देशातर,
विविध लोक संपर्कों से अब विकसित अतर!

भू में आज विभव अपार दारिद्र्य अपरिमित,
ज्ञान अखड, असंख्य अविद्या तम से पीड़ित!
साधन विकसित, जीव कामना क्षुधित निरावृत,
रोग ग्रस्त मन, जीवन विषम, मनुज आत्मा मृत!
धरा वक्ष राष्ट्रों के कटु स्वार्थों से खडित,
उन्नत स्वर्ण कलश देशो के विष परिपूरित!
गगन सिन्धु भीषण रण चीत्कारो से नादित,
मनुष्यत्व भौतिक वैभव से आज पराजित!

जाति वर्ण वर्गों मे मानव जाति विभाजित,
अर्थ शक्ति से रक्त प्राण जन गण के शोषित!!
जीवन मंदिर मे यत्रो की मृत्यु प्रतिष्ठित,
मानव के आसन पर दानव मुख अभिषेकित!
क्षुद्र आत्म-रत मध्य वर्ग कृमि व्यूह सा घृणित,
अर्थ दस्यु रे उच्च वर्ग धन मद उत्तेजित;
वक्ष प्रीति का धृष्ट काम के कर से मर्दित,
अहम्मन्यता, अंध लालसा से भू कपित!

विधि ने ऐसा विषम विश्व, अह, किया क्यो सृजन,
यह क्या प्रकृति विधान कि मानव कृत संघर्षण!

रिक्त सुरा का बुद्‌बुद सा क्षण भंगुर जीवन,
चिर विमर्ष निर्वेद ग्लानि से भर जाता मन!
किसका उर रे जग के कटु घातों से वंचित?
जीवन का पी तिक्त तप्त विष कौन न मूर्छित!
किसका दर्प न पद मर्दित? आशाएं लुंठित?
पार कर सका माया का पुल कौन अकलुषित!

धूप छाँह यह जग, आशा मे घुली निराशा,
राग द्वेष सुख दुख सँग बँधी अमिट अभिलाषा!
विरह मिलन संघर्ष शांति जग की परिभाषा,
जन्म मरण रुज् जरा ग्रथित रे जीवन श्वासा!
पाप पुण्य औ' मिथ्या सत्य जगत मे गुंफित,
ज्योति तमस द्वन्द्वो से निश्चय संसृति निर्मित!
यहाँ कुरूप सुघर, साधारण, पूज्य तिरस्कृत,
धनी दीन, भोगी त्यागी, औ' मूढ़ विपश्चित!
सच है, जग मे सुख से अधिक दु.ख ही निश्चित,
घृणा प्रेम से, दैन्य विभव से कही असीमित!
प्रतिभा से आडंबर, दर्प विनय से पूजित,
संस्कृति ज्ञान कला कोने मे पडी उपेक्षित!

जगत जीवन के कुछ अभ्यास
बन गए अब उर के विश्वास,
सद् असद् सदाचार व्यवहार
लिपट प्राणो से गए उदास!

व्यक्ति जीवन, जग जीवन भिन्न,
प्रार्थना मे मिलता आश्वास;
आज बहिरतर जग के मध्य
दीखता अमिट विरोधाभास!

मध्य बिन्दु क्या बहिरंतर का? भव क्या प्रगति निरंतर?
क्या हूँ मै, क्या जग, क्या जीवन? क्या कुछ इनसे भी पर?
सदाचार क्या धर्म? जगत मे क्यो है विविध मतांतर?
क्या है मिथ्या सत्य? मान जीवन के जिन पर निर्भर?
दृश्य जगत औ' मन से पर क्या आत्मा नित्य, अगोचर?
विकसित हुआ स्वय यह भव, या इसका स्रष्टा ईश्वर?
क्या जड, क्या चेतन? मथित अब जिज्ञासा से अतर,
विद्युत् सी हो स्फुरित प्रेरणा देती ज्यो कुछ उत्तर!

चेतना रे जिनकी विस्तृत
हृदय मे उनके अथक प्रयास,
किस तरह बने मानवोचित
जगत जीवन अश्वत्थ निवास!

तरुण जीवन का वाष्प प्रसार
तथ्य बूँदो मे आज गलित,
व्यक्ति गत जीवन का वैराग्य
हो रहा उर मे शनै. उदित!
लोक सेवा मे जीवन पुष्प
चाहता मन करना अर्पित,

आज करुणा विदीर्ण अंतर
दीन, आर्तो को देख द्रवित !

विषमता के निर्मम पद से
फूल जो जीवन के मर्दित,
अभावों के असुरो ने चूस
कर दिया जिनको जीवन्मृत;
सतत उत्पीड़न शोषण से
बने जो विकृत गर्ह्य दूषित,
हुई कटु घातों से जग के
सहज श्रद्धा जिनकी कुंठित !

हृदय सोचता कैसे उनका मिटे कदर्य पराभव,
कैसे हँसे दिगत धरा के, मानव हो फिर मानव !
ओ धरती के आर्त तप्त जन, कहता ज्यो कातर मन,
मत खोओ विश्वास हृदय का, मत खोओ मानवपन !
अश्रु स्वेद औ' रक्त से सनी भू की गाथा निश्चित,
पीड़न शोषण संघर्षण से करुण सभ्यता निर्मित !
मानव भू देवता, दलित, लुठित, ओ जग के लाछित,
कलुष कालिमा के भीतर हो रही चेतना विकसित !
सामाजिक जीवन से कही महत् अंतर्मन जीवन,
वृहत् विश्व इतिहास, चेतना गीता किंतु चिरंतन !
भर देगा भूखी धरती को अंतर्जीवन प्लावन,
मनुष्यत्व को करो समर्पित खडित मन, कवलित तन !

तुच्छ नही समझो अपने को, तुम हो पृथ्वी वासी,
फिर तुम भारत वासी जो, वसुधैव कुटुम्ब प्रकाशी ;
देखो, मा के अंचल मे जो रत्न बँधा अविनाशी,
जगत तारिणी भरत भूमि, वह नही भिखारिन, दासी !

आँसू क्षण- अनुभव से हँसकर
धोते जीवन के रुधिर चरण,
हृदय ताप संगीत बन मुखर,
गाता विरत प्रीति का गायन !—
जग के दीनो दुखियो, एक कठ हो गाओ,
बधिर श्रवण को वृथा न दुख की कथा सुनाओ !
किसे रुचेगी राम कहानी निर्मम जग मे
काँटे बोता है जब मनुज मनुज के मग मे !
तुम हो दुख के धनी, मनुज का दुख बँटाओ !
कुतर भाग्य के पख, उडो हे हृदय गगन मे,
धोओ मानव के विक्षत पग जीवन रण मे ;
लघु ममत्व की बेलि निखिल जग मे लिपटाओ !
मनुज नियति यह, पीड़क मनुज, मनुज ही पीडित,
यह विकास की गति, मानव उर होगा विस्तृत ;
नव जीवन के अग्रदूत तुम, जो उठ पाओ !

ध्वंस एक युग, धूलि धूसरित नव युग का तन,
आज मनोजग मे केवल सघर्षण, क्रदन ;
मोह विगत का तज, नूतन को मूर्त बनाओ !

अंध लालसा लोभ घेरते मानव का मन,
तुम हो रिक्त, बने मनुजत्व तुम्हारा चिर धन;
द्वेष घृणा की रज मे प्रेम त्याग बो जाओ!
जो अपने मे सीमित, मरते रहते प्रतिक्षण,
जग के प्रति जीवित, करते चिर मृत्यु का तरण;
खोल मरण के द्वार, अमर प्रांगण मे आओ!
क्षण भंगुर यह तन, आत्मा रे मुक्त चिरंतन,
ईश्वर जग मे व्याप्त, त्याग से भोगो भव जन;
यह चिर परिचित भारत स्वर, फिर इसे जगाओ!
जग के दीनो दुखियो मुक्त कंठ हो—गाओ!

देख वत्स का अकलुष आनन
हृदय रक्त कर उठता नर्तन,
विश्व चेतना का आकर्षण
युक्त सृष्टि से कर देता मन!
शाश्वत का पा स्पर्श अपरिचित
डूब स्वांत का जाता क्रंदन,
उर का चिर तारुण्य फूट कर
नित्य जगत का करता सर्जन!
मुक्त सृजन-आनंद हृदय मे
हो उठता अज्ञात तरंगित,
जीवन का अमरत्व सनातन
मुग्ध दृष्टि को करता विस्मित!

निश्चय ही यह जग शाश्वत मुख का चिर दर्पण,
मनुज नियति रे यह कटु सामाजिक संघर्षण;
सत्य, ज्योति, अमरत्व चाहता है अंतर्मन,
सुदरता, आनद, प्रेम,—वह शाश्वत का कण!

जग वैषम्यो को जीवन गति मे कर निखिल समन्वित
मानवता को शाश्वत की आकृति मे होना विकसित!
खड युगो की संस्कृति को भव संस्कृति मे एकीकृत,
धरती के आहत तन मन को होना शोभित ज्योतित!
नव सतति की शिक्षक होगी नव भव स्थितियाँ निश्चित,
दैन्य द्वेष नैराश्य ग्लानि से होगे वत्स अपरिचित;
मातृ वत्सला सत्ता से होगे जनगण प्रतिपालित,
विकृत रुग्ण कवलित होगे मानवता से सरक्षित!

सस्मित होगा धरती का मुख,
जीवन के गृह-प्रागण शोभन;
जगती की कुत्सित कुरूपता
सुषमित होगी, कुसुमित दिशि क्षण!
विस्तृत होगा जन मन का पथ
शेष जठर का कटु सघर्षण,
सस्कृति के सोपान पर अमर
सतत बढेगे मनुज के चरण!

विशद चेतना ही सत्ता का कर सकती परिचालन
जन जिसके अगणित अवयव, सस्कृति केवल सचित मन;

भूत भ्रांत मानव को निश्चय बनना अंतर्लोचन,
सत्य अखंडित, युगपत् बढ़ते रे बहिरंतर जीवन!
रवि की आभा ज्यों शशि उर मे होती बिम्बित,
प्रौढ़ बुद्धि मे शनैः विश्व मन हुआ प्रवाहित!
जीवन सज्जा अब न चित्त करती आकर्षित,
रूप रंग पंखो मे सत्य हृदय जो स्पंदित!

क्षेत्र बना मानव के मन को
करते मंगल सृजन विश्वमय,
स्पंदित शत मानस यंत्रों से
होता ज्ञानोदय का संचय!
मुक्त, सर्वगत हो विकसित मन,
करता जीवन पर्यालोचन,
अमृत हास्य ला शाश्वत सुख का
भर देता नव जीवन प्लावन!

नही क्षुधा औ' काम मात्र से
हुई लोक संस्कृति रे विकसित,
मानव के देवत्व के लिए
विश्व पीठ जीवन की निर्मित!
चीर काम का तमस आवरण
होगी स्वर्गिक प्रीति अगुठित,
मृन्मय मानस दीपक होगा
अमर चेतना लौ से दीपित!

जीवन के स्वर्णिम वैभव पर
आत्मा का अवतरण प्रतिष्ठित,
मनुष्यत्व के मुख मडल पर
शाश्वत अतर आभा शोभित!

(५)

शेष पथ. श्वसित शिशिर की वात,
शिला शीतल प्राणो का ताप,
गिर रहे पीले जीवन पात
विरस क्षण, सिसक, खिसक चुपचाप!
अस्थि पजर अब जग की डाल
भर रही हिल हिल ठढी साँस!
कुहासे मे स्मृति के आवृत
विगत यौवन के चल मधुमास!
भूल फूलो के आलिगन
वात हत लतिका भू लुठित,
न अब वह गुजित तरु जीवन,
न जीवन सगिनि ही परिचित!
न वह मधु रस न रंग गुजार,
धूलि धूसर गभीर दिगत,
फूल फल, रच भव स्वप्न असार,
बीज मे लय फिर हुआ अनत!

दृगों मे हँसते जीवन अश्रु,
कमल मे ज्यों हिम जल थर् थर् !
शांत नीरव आत्मिक संतोष
गया भव क्लांत हृदय मे भर !
रूप रगों की मांसल देह
तीलियों की अब त्वक् पिजर,
गूढ नि शब्द गिरा मे लीन
मुखर खग के अंतर्मुख स्वर !

चल रहा झुक लाठी पर आज
वृद्ध, जीवन के प्रति साभार,
छोड़ चेतन जड़ का अवलंब
करेगा मृत्यु द्वार फिर पार !
अकेला वह विशिष्ट रे पांथ,
न पथ के सँग यात्रा का अंत ;
विश्व मे रिक्त व्यक्ति का स्थान
नही भर सकता स्वय अनंत !
मारता वह विनोद से आँख
देख नव युवति युवक को साथ,
झुर्रियाँ हँसती नीरद हास,
फूलता पेट, झूलता माँथ !

पक्व जीवन का फल वह पूर्ण,
तृप्त उर, चर्म रध्र चरितार्थ ;

खीच सकते न देह मन प्राण
विश्व प्राणों से सार पदार्थ !
व्यग्र रे अमृत अनिल मे आज
व्याप्त होने को ज्यो क्षण श्वास ,
विकल उडने को खग, पर खोल ,
छोड भस्मात देह तरु-त्रास !

पितामह · पलित कॉस के केश ,
पुत्र औ' पौत्रो का अब घर ,
वधू अचल मे नव शिशु देख
सोचता कुछ तटस्थ अतर !

सोच रहा वह, या मन की आँखों मे जगकर ,
सूक्ष्म जगत हो रहा स्वप्न के पट पर गोचर !
श्रात इद्रियों की निद्रा से जाग्रत अंतर
देख रहा, मै जीवन की छाया से हूँ पर !
समदिक् जीवन से प्रिय ऊर्ध्व उसे अब जीवन ,
प्रीति मधुरिमा से प्रिय शिव औ' सत्य सचरण !
खड़ा द्वार पर जीवन के ककाल सा मरण ,
मोह दिशा का मिटा, काल से शेष अभी रण !

क्या है मृत्यु ? गहन अतर मे
उठता रह रह प्रश्न भयानक ,

शेष वही होजाएगा क्या
जीवन का करुणात कथानक !
खुलते है स्मृति के पट पर पट
विगत दृश्य होते क्षण गोचर,
स्वप्न चित्र से वर्ष आयु के
उड़ते धूमयोनि से नभ पर !

अह, तृष्णा के वाष्पो की क्या
माया यह भंगुर जग जीवन !
सोया काल दिशा शय्या पर
स्वप्न देखता या क्या क्षण क्षण !
देह निधन का द्वार पार कर
आत्मा कहाँ करेगी विचरण ?
क्या जीवन की गोपन तृष्णा
केवल जन्म मरण का कारण !

आत्म मुक्ति के लिए क्या अमित
यह ग्रह ग्रथित रग भव सर्जित ?
प्रकृति इन्द्रियो का दे वैभव
मानव तप कर मुक्त बने नित !
नही संत कुल हुआ सत रे
जीव प्रकृति के सब जन निश्चित,
लोक मुक्ति है ध्येय प्रकृति का
मनुज करे जग जीवन निर्मित !

तन से ही कर नव तन धारण
अमर चेतना करती सर्जन,
चेतन की भव मुक्ति के लिए
वाहन जड तन, मात्र न बधन!
मुक्त सृजन आनद को स्वत
रूपो का नव बधन स्वीकृत,
आत्मा जीर्ण वसन तज रज का
नव वसनों मे होती भूपित!

आशिक उसे लगा जीवन का
जड चेतन का बौद्धिक दर्शन,
जड चेतन से परे अगोचर
जीवन के है मूल सनातन!
अन्न प्राण मन आत्मा केवल
ज्ञान भेद है सत्य के परम,
इन सब मे चिर व्याप्त ईश रे
मुक्त सच्चिदानद चिरतन!

•

तरुण रथी ने झेले बहु फूलो के शायक,
क्रात दृष्टि वह रहा, विचारक, जनगण नायक,
अन्वेषक, शोधक, निज युग का भाग्य विधायक,
धर्म नीति दर्शन मथन मे अपर विनायक!
अब प्रसक्ति का हृदय बना निर्मम, भव कुठित,
तर्क बुद्धि अनुभूति, चेतना-अमृत मे द्रवित,

मुक्त हुआ वह सूत्र सृष्टि पट जिससे ग्रंथित,
व्यक्ति विश्व से, इंद्रिय मन से जो अतीत नित!
सहज चेतना से अब उसका हृदय प्रकाशित,
आतप सी वह, जिसे न भू रज करती रंजित!
शैशव यौवन शिशिर वसंत उसी मे चित्रित,
शुभ्र किरण वह, जीवन इन्द्रधनुष मे सर्जित!

आज समस्त विश्व मंदिर सा
लगता एक अखंड चिरंतन,
सुख दुख जन्म मरण नीराजन
करते, कही नही परिवर्तन!
ऊषा के स्वर्णिम गुंठन से
आभा अमर स्पर्श करती मन,
पदतल पर श्लथ जीवन छाया,
सन्मुख ज्योति देश अब नूतन!

पुण्य हरित भू का दूर्वादल
पाप ताप मे सतत अकलुषित,
स्वर्ग चेतना सदृश उतर अब
उस पर खड़ी धूप ज्यों जीवित!
टूटी मन की जाग्रत निद्रा,
क्षीण अहम् का शशि छायानन,
विहगो के प्रभात कलरव मे
मिलता शाश्वत लोक जागरण!

विनत पद्म संध्या आँगन मे
मौन प्रार्थना, आत्म समर्पण,
ताराओ के स्तिमित स्वर्ग मे
सोई अपलक शांति चिरतन।

खुला गगन मे आज मुक्त मन,
नीलि योनि मे अब वह सुदर,
आसन मे केवल उसका तन,
अतरतम मे स्थित अब अतर।

अटल शाति मे भव संघर्षण,
अमृत अक मे जन्म औ' मरण;
अतल अकूल चेतना सागर,
क्षुब्ध मात्र भव सलिल आवरण!

हुआ हृदय मे स्फुरित अचानक
सत्य निखिल जग मे जो व्यापक,
कहाँ देखता रहा वह अथक
क्या? वह जिससे रे नित अपृथक।

वही तिरोहित जड मे जो चेतन मे विकसित,
वही फूल मधु सुरभि वही मधुलिह् चिर गुजित!
वस्तु भेद ये: चिर अमूर्त ही भव मे मूर्तित,
वह अज्ञेय, स्वत सचालित, एक, अखडित।

अध. ऊर्ध्व बहिरंतर उसके सृष्टि संचरण,
सात अनत, अनित्य नित्य का वह चिर दर्पण,
एक, एकता से न बद्ध, बहु मुख शिख शोभन,
सर्व, सर्व से परे, अनिर्वचनीय, वह परम!

उतर चेतना पुन बनी मन
खुला रहस्य, सूक्ष्म पा दर्शन!
जगा दृष्टि मे इन्द्र धनुष घन
बहिरतर जग जीवन वितरण!
सप्त चेतना निर्झर भव मे
शाश्वत अमृत कर रहे वर्षण,
स्फुरित दीप्त लोको से भासित
स्वर्गगा स्मित उर पथ गोपन!
सृजन शक्तियो से चिर ज्योतित
अंतर्मन का दिव्य चिद् गगन,
बहिर्जगत रजित चेतन मन
मात्र चित्र छाया अवगुठन!

लगा उसे युग युग से सचित
मनोद्रव्य से सस्कृति निर्मित,
नीति धर्म आदर्श जीर्ण मृत
जन समाज जीवन मे गुफित!
जाति वर्ण गौरव से पीड़ित
वर्ग राष्ट्र स्वार्थो मे सीमित

जैन समुद्र रे आज अचेतन
अध प्रवेगो से आदोलित !

नव मानो से हो जो कल्पित
पुन लोक सस्कृति पट ज्योतित ,
हो कृत काम नियति मानव की
स्वर्ग धरा पर विचरे जीवित !
भू पर जन सत्ता हो विकसित
अतर्जीवन से सबधित ,
शिल्पी सी चेतना जागरित
करे नव्य मानव मन निर्मित !

मानव-का-देवत्व केन्द्र हो ,
परिधि जगत जीवन हो विस्तृत ,
जीवन का ऐश्वर्य अपरिमित
मानव ईश्वर को हो अर्पित !
बहिर्जगत के वैभव का मद
अतर्मानव से हो चालित ,
ऋत चित की आभा से चुबित
मनुष्यत्व हो पूर्ण प्रस्फुटित !
वस्तु परिस्थिति हो मनुजोचित ,
त्याग भोग का हो वर साधन ,
रुचि स्वभाव वैचिव्य से ग्रथित
जन जीवन लीला हो शोभन !

सृजन शील हो मानव चेतन
मानवता मे कुसुमित जीवन,
जग हित जीवन मधु हो सचित,
हो अलिप्त कर्मो से जन मन।

सर्व शक्तिमत्ता आत्मा की
जीव सृष्टि मे बहुमुख विकसित,
रुचि अनुकूल विकास व्यक्ति का
श्रेयस्कर मानव समाज हित।
ज्ञानी कर्मी शिल्पी सैनिक
एक सत्य के अवयव निश्चित,
अंतर्पथ से निखिल चराचर
आत्मा के बल से सपोषित!

भू रचना का भूति-पाद युग
हुआ विश्व इतिहास मे उदित,
सहिष्णुता सद्भाव शाति से
हों गत सस्कृति धर्म समन्वित।
वृथा पूर्व पश्चिम का दिग् भ्रम
मानवता को करे न खडित,
बहिर्नयन विज्ञान हो महत्
अंतर्दृष्टि ज्ञान से योजित।

पश्चिम का जीवन सौष्टव हो
विकसित विश्व तंत्र मे वितरित,
प्राची के नव आत्मोदय से
स्वर्ण द्रवित भू तमस तिरोहित !
लोक नियति निर्माण करे नव
देश देश के विवध विपश्चित,
राष्ट्र नायको के सँग दुर्वह
राज कर्म मे हो सक्रिय चित !

सर्वोपरि मानव सस्कृत बन
मानवता के प्रति हो प्रेरित,
द्रव्य मान पद यश कुटुव कुल
वग राष्ट्र मे रहे न सीमित !
एक निखिल धरणी का जीवन,
एक मनुजता का सघर्षण,
विपुल ज्ञान सग्रह भव पथ का
विश्व क्षेम का करे उन्नयन !

दिव्य क्षेत्र हो जो भू जीवन
युक्त निखिल हो भू के मानव,
अतर्जीवन का प्रवाह ही
भर सकता जग मे समत्व नव !
नही दिव्यता स्वप्न कथा रे
वह अतरतम मे अतर्हित,

सार तत्व वह मनुष्यत्व की
निखिल सृष्टि की गति मे झंकृत !

विजातीय हो कलुष तमस दुख,
स्वजातीय देवत्व चिरंतन,
मानव तू शुक्रोसि स्वरसि
भ्राजोसि ज्योतिरसि, सत्य ऋषि वचन !
मानव के उर के मंदिर मे
स्वर्ग प्रीति की शिखा प्रज्वलित,
है देवत्व धाम मानव का,
वह रे मनुज नियति, यह निश्चित !

नर नारी का रुद्ध हृदय ज्यो
आज स्वर्ग की लय से वंचित,
वे प्रभात के स्वर्णातप से
रज तन मे न विचरते ज्योतित !
देह मोह, अधिकार प्रणय से
लोक चेतना भू की पीडित,
युवति युवक जीवन सागर मे
नही प्रीति लहरों से दोलित !

क्यो मानव यौवन वसंत सा
हो न लोक जीवन मे कुसुमित,

मधुर प्रीति हो सामाजिक सुख,
प्राण भावना आत्म सयमित !
करे मुक्त उपभोग हृदय का
नर नारी निज रुचि से प्रेरित,
आदर प्रीति विनय हो उर मे,
अग लालसा का मुख सस्कृत !

भावी सतति को दे मानव
पुण्य चेतना की हवि दीपित,
हो मौलिक सस्कार वधू का
जाग्रत, कृत्रिमता से कुठित !
जाति प्रसू वह, स्वय प्राकृतिक
वरण वृत्ति हो उसकी विकसित,
नर का पौरुष जगे, पुन वह
द्रोही पशु हो मानव निश्चित !

हो प्रतीति परिणय प्राणो का,
कुल दीपक सुत भू के रक्षक,
नर नारी का लौकिक जीवन
यौवन आवेगो का शिक्षक !
हृदय-तमस आलोक-स्रोत पा
हो जीवन सौन्दर्य मे द्रवित,
प्राण कामना सृजन शील बन
धरा स्वर्ग रचना मे योजित !

आज पारिवारिक जग जीवन
अश्रु नयन कलहो से कवलित,
परिणय के अगणित पापो से
वद्ध मनुज चेतना कलकित!
जब तक मानव हृदय देह के
नर नारी मानों मे खंडित,
नही मानुषी रे वह सस्कृति,
वह सामाजिकता अभिशापित!

नर नारी का मुक्त हृदय हो
निकष प्रकृत सस्कृति का केवल,
अकित उस पर शोभा रेखा
मनुष्यत्व की हो स्वर्णोज्वल!
जिस जगती की चित्र प्रकृति नित
शत ध्वनि वर्णों से सुख मुखरित,
वहाँ क्यों न कुसुमित अवयव जन
विचरे अंत श्री से दीपित!
हँसता जहाँ अमर तारापथ
धरा नाचती श्वसित तरगित,
वहाँ न क्यो मानव जीवन हो
प्रेम हर्ष आशा से स्पदित!

दिखा उसे देवत्व सार मानव जीवन का,
पाप पुण्य सदसद् का जगत, जगत भू मन का!

गत जीवन की छाया से भू का मन आवृत,
निज अतस्थ किरण से जनगण अभी अपरिचित।

बहिरतर वैभव का हो जो विश्व समन्वय
रूपातरित जगत जीवन हो, नव स्वर्णोदय।
मूल सत्य देवत्व मनुज का रे जो निश्चय,
दैन्य दुरित का मन तब केवल आत्म पराजय।
मानव को जो देव मान हम सोचे क्षण भर
गोचर तमस विकृति का कारण हो तब बाहर।
दिव्य उषा के लिए क्षेत्र जो रचे लोकगण
स्वर्ण किरण हँस धरे धरा पर ज्योति के चरण।

मन ने ज्यो दृग खोल किया जीवन को विकसित
आत्मा का सचरण करे मन को आलोकित!
प्रीति शिखा में भेद बुद्धि जल उठे प्रज्वलित,
ऊर्ध्व चेतना विचरे जग जीवन मे मूर्तित।

दिखा उसे मानव भविष्य छाया सा चित्रित
मन से नही मनुज की भावी होगी निर्मित।
मानव के ईश्वर को नव जीवन अगीकृत,
निकट क्षितिज मे दिव्य मेघ वह उठता ज्योतित!
दीप भवन युग विद्युत् युग मे ज्यो दिक् शोभित
मन का युग हो रहा चेतना युग मे विकसित।
द्विधा बुद्धि मे मनु न रहेगा अधिक विभाजित,
जन मन के अणु से होगी चिच्छवित प्रवाहित।

प्लावित करती शिशु अधरों को
अंतर की आभा स्मिति निश्छल,
वृद्ध सोचता किन स्थितियों मे
शिशु को बढना होगा प्रतिपल!
युग जीवन की रज को लिपटा
कैसा रजित होगा वह मन,
जन्मो के किन सस्कारो का
उसके अतर मे आकर्षण!

अतर्यामी पुरुष करेंगे
निश्चय उसका नव पथ ज्योतित,
पर सीमाओं का मानव मन,
कॉटो का जग का मग कुचित!

नही ज्ञान से होता अविकल
समाधान मानव के मन का,
व्यक्ति विश्व से ही रे केवल
है सबध नही जीवन का!
गूढ रहस्यों के अभेद्य स्तर
जिन पर जीवन की गति निर्भर,
अवचेतन प्रच्छन्न मनस् का
निस्तल अविच्छन्न रे सागर!

वयस भार से झुका धनुष सा
पृष्ठ वंश. रेखांकित आनन,
दृष्टि क्षुधा निद्रा भी क्रमश.
शिथिल हुई अब, मन्द स्मृति श्रवण।
प्रात ब्राह्म मुहूर्त मे स्वत.
खुल जाते यात्री के लोचन,
एकाकी अतर करता तब
प्रभु से नीरव आत्म निवेदन।

हे जीवन आराध्य, हृदय वासी, हे मानव ईश्वर,
मंगलमय, तुम सर्व प्रथम अक्षय करुणा के सागर!
माता पिता पुत्र भार्या निज पर, जन्मो के सहचर,
विश्व योनि, तुममे अनादि से जग के निखिल चराचर!
आते जाते जन्म मरण बहु तन मे शैशव यौवन,
आशाऽकाक्षा राग द्वेष मन में करते सघर्षण;
नीति धर्म आदर्श विविध बनते जीवन मे बधन,
तुममे जगते दिशा काल, लय होते, देव परात्पर!

खोज निरतर तुम्हे, अपरिमित महिमा से हो विस्मित,
नेति नेति कह बुद्धि मनुज की कब से प्रणत, चमत्कृत।
हृदय सुलभ तुम, सहज कृपा कर देती उर तम ज्योतित,
ज्यों पारस का परस अयस का रहस स्वर्ण रूपातर।

सदसद् कारण-कार्य प्रकृति के केवल मात्र प्रयोजन,
देव, तुम्हारी अमित दया से होता भव का पालन;

तुमसे रहित अचिर अपूर्ण जग, तुमसे पूर्ण चिरंतन,
तुम हो, भव है : शून्य एक के गुण से गणित निरंतर !
तुमसे जो मन युक्त, सकल जग जीवन हो आराधन,
प्रेम, तुम्हारे हित माया का पाश मुक्ति हो प्रतिक्षण;
तुममे केन्द्रित लोक योजना बने स्वर्ग सी पावन,
मानव के घट वासी, दो मानव को नव जीवन वर !

× × ×

रहे निर्निमिष भौतिक लोचन
प्रभु प्रभु-भक्त गए अभिन्न बन,
मात्र सच्चिदानद चिरतन !
जय अमर्त्य का मर्त्य पर्यटन !

श्रवण गगन मे गूँज रहे स्वर
ॐ ऋतो स्मर कृत ऋतो स्मर !
सृजन हुताशन को हवि भास्वर
बनी पुन. जीवन रज नश्वर !

दृष्टि दिशा मे ज्योति मूर्त स्वर,—
ॐ ऽ कृतो ऽ स्मर कृतं ऽ स्मर
ऋतो ऽ स्मर कृत ऽ स्मर !

शुभमस्तु

अशोक वन

निरालाजी की 'राम की शक्ति पूजा' नामक प्रबंध काव्य
से प्रेरित यह अशोक-वन. मैथिलीशरण गुप्त को भेंट
किया है.. ताकि पाठक निराला का ध्यान भूले रहें और
गुप्तजी से इसकी तुलना करते रहें और मौलिकता का
आभास पाते रहें।

भक्ति प्रारण

श्री मैथिलीशरण जी गुप्त !

योग्य नही कुछ भेट . आप चिर मैथिली शरण ,
गीत मैथिली के गा छूता स्नेह से चरण !
शैशव ही से रहा आप के प्रति आकर्षण
ललित भणिति का किया प्रीति वश चपल अनुकरण !
अमर भगीरथ आप, रसात्मक तृषा कर हरण
स्वरापगा का प्रथम कराया मधुर अवतरण !
सरस्वती से स्वय आप का सुन वीणा क्वण
कर्ण बन गए जन के प्यासे जह्नु के श्रवण !
'सूर सूर तुलसी शशि...' लगता मिथ्यारोपण
स्वर्गंगा तारापथ मे कर आप के भ्रमण !
स्वर्ण कलश कवि यश की यशोधरा नि सशय ,
बसा गए साकेत, शिल्पि, नव आप चिरतन ;
व्यथा कथा लिख गए गुप्त हृत्पत्र पर अभय ,
भारत नारी तीर्थ उर्मिला का उर क्रंदन !

क्रम

ज्यों ज्यों हुई चेतना जागृत
प्रभु भी जग मे हुए अवतरित,
अंतर्मन मे परिणत होकर
हुआ प्रतिष्ठित सत्य चिरतन !

(१)

ध्यान मग्न बैठी वैदेही !

अपलक नील गगन तन तकती
ऊर्ध्व मना, वह कब थी देही ?

मर्मर क्या करता अशोक वन ,
शत सहस्र युग करते क्रदन ,
निखिल प्रकृति, मृदु तृण, चलोर्मि, श्लथ
सुरभि, किरण नत उसके स्नेही !

कँपती तन पर छन तरु छाया
उर का द्वन्द्व उमड हो आया ,
सूने लगते गृह आँगन वन ,
राम बिना, जो त्रिभुवन गेही !

राम जानकी को बिलगा कर
उमड रहा दुख से भव सागर ,
लहराती कण कण मे आशा
धर्म सेतु प्रभु बाँधेगे ही !

(२)

कैसा था वह परम पुण्य क्षण !

लता भवन से प्रकट हुए थे
जब दो भ्राता श्याम गौर तन !

परम रूप प्रभु नव इन्दीवर,
ज्योति हस लक्ष्मण पद अनुचर,
जाग्रत मानस मे अनत छबि
निद्रित जल मे शांत स्मित गगन !

अमित नील ही प्रभु मे नर तन,
शुभ्र शरद -से निर्मल लक्ष्मण,
देख एक ही शोभा अपलक
दर्शन सूक्ष्म बनी चल चितवन ।

खीच लिए प्रभु ने लोचन मन
खुले दृष्टि के भौतिक बधन,
निज सीमा कर पार नयन ज्यो
भूल गए क्षर रूप विलोकन ।

जगा मनोलोचन मे तत्क्षण
विश्व श्याम तन आभा का घन ।
दिखा, चेतना की छाया सा
दिशि पल में चित्रित जग जीवन ।

सूक्ष्म राम ने प्रथम ज्यो चरण
धरे धरा पर, किया अवतरण,
पा सीतामय प्राण पीठ प्रिय,
भू के हृदय कमल की पावन !

(३)

वन की मर्मर क्या गाएगी ?
कहती वह शकित स्वर मे—क्या ,
किरण तिमिर मे खो जाएगी ?

भस्म हो चुकी जो भू रज जल ,
उठी शिखा सी जो चिर उज्वल ,
जगी चेतना धरती की जो
वह, क्या भू पर सो जाएगी ?

पृथ्वी की पुत्री यह सीता
पृथ्वी जिससे हुई पुनीता ,
वह क्या आदिम भू जीवन के '
छाया तम को अपनाएगी ?

छूकर चरण राम के पावन
बनी धरा प्रतिमा जो चेतन ,
वह चिन्मयी लिपट जड रज से
फिर क्या मृन्मय हो पाएगी ?

भूल गई जो तन, अपनापन ,
जिसके मन का बना राम तन ,
रूप गध रस की मृत रज को
वह ज्योतित कर न उठाएगी ?

(४)

क्या अशोक वन है, क्या सीता ?
वह सुख वैभव स्वर्ग, और यह
जन मंगल की मूर्ति पुनीता।

एक युगांत, रुद्र धनु खडन,
कृषि युग सर्जन राम अवतरण,
जन मन धरती, जग जीवन कृषि,
सस्कृति कृषि श्री,—क्षितिजा प्रीता !

गत जीवन ममत्व ही धर तन
जन मन मे था माया रावण,
मिटा धरा से उस विरोध को
सीता हुई अशेष गृहीता।

रावण था युग वैभव प्रतिमा,
अमित प्रताप, बुद्धि बल गरिमा,
युग आकांक्षा से अविद्ध वह,
जन मन शत्रु, मही थी भीता !
जन आकांक्षा को था उठना,
प्रभु को उतर मनुज था बनना,
भू-ईप्सा को स्वर्ग-दया से
होना था जग हित परिणीता !

जब आते महान परिवर्तन
प्रभु तब भू पर करते विचरण,

यह इतिहास मनो जीवन का,
सृजन विकास, चेतना गीता।

(५)

देवि सजा दूं फूलो से तन।
अवधि हो गइ, आएँगे अब
लकापति करने अभिवादन।
मदोदरि के भेजे पावन
नदन वन के पुष्प आभरण
दमक उठेगे तन की छवि से
ज्यो शशि से रँग नवल शरद घन।
ये सुरगुरु के तोडे शुचि फल
ग्रहण करो, हो पुन ये सफल,
स्वर्ग पेय लो यह मृदु मादन,
करो सुधा से मुख प्रक्षालन!

लंका का यह शाश्वत मधुवन
देवि, तुम्हारी छवि का दर्पण,
नत चितवन, मृदु चरण, सहज स्मिति
बन जाते शत मुकुल तृण सुमन!
गध-व्यजन पुलकित मलय पवन,
उठ उठ लहरे करती दर्शन,
तुम भूमिजे, धरा की शोभा,
क्या आश्चर्य प्रणत जो रावण!

... ...

चेरी त्रिजटा निर्निमेष मन
करती नित नीरव नीराजन,
ज्योति दृष्टि से हृदय कामना
उठकर दीप शिखा जाती बन!

(६)

शोभे, अभिनन्दन हो स्वीकृत,
लकापति हो उपकृत!
पुष्पो से भी पेलव श्री तुम
पुष्प करूँ क्या अर्पित?

जिस अभिलाषा से जर्जर मन,
जिन स्वप्नो से अनिमिष लोचन,
जिस मद से रावण है रावण,
तुम्हें देख हो जाते प्रशमित!

त्रिभुवन में विश्रुत जो दानव
तुम्हे देख बन जाता मानव,
कौन मोहिनी तुम? रावण की
माया भी हो जाती मोहित!

दर्प दलित अब मेरा जीवन
विगत चेतना का पावक कण,
पा सुरमाया पवन, शिखा बन,
बुझने को हो उठा प्रज्वलित!

देख रहा मैं विस्मित लोचन
घेरे राम तुम्हे, आभा घन,
दीपक की निष्कप शिखा तुम
अमित ज्योति मडल से मंडित !

अखिल ज्ञान पूजन आराधन,
रण कौशल, त्रिभुवन वैभव धन,
मुझको लगता, सार हीन हे,
यदि वे नही विश्व मगल हित !

रावण को प्रिय नही नारि तन,
वह सुरांगनाओ का मोहन,
माया से भी कर सकता वह
पल मे शत सीता तन निर्मित !

मुझे चाहिए, देवि, यह हृदय,
जिसमे निखिल सृष्टि का आशय,
प्रथम वार यह हृदय धरा पर
आज हुआ अवतरित कि विकसित !

(७)

क्या दूँ तुम्हे, रक्षपति, उत्तर ?
इस जग मे वैदेही केवल
हृदय, राम केवल हृदयेश्वर !
धरती की आकांक्षा [illegible]
त्रिभुवन [illegible] प्रति से [illegible]

भू पर उसके पद, भव मे मन,
हृदय राम मे लीन निरतर।

सतत लोक मगल मे जो रत
भू का हृदय राम का अनुगत,
क्या तुम बॉध सकोगे उसको,
घट मे समा सकेगा सागर ?

युग युग से विच्छिन्न जडावृत
जग जो शक्ति हुई फिर केन्द्रित,
क्या ममत्व के दोने मे वह
ज्वाल रहेगी ? सोचो क्षण भर !

वही राम जो जीवों में क्षर
वे जीवों के परे परात्पर,
सीता से वे युक्त जगत से,
तुमसे, बनो जो कि प्रभु अनुचर !

हरा राम ने मोह निशा भय
उठा पंक से पद्म भू हृदय,
छोडो मोह निशाचर पति अब,
प्रकटे लोकोदय के दिनकर !

(८)

भुवन विदित मै भू अधिकारी !
जीत सकेगे मुझको राघव,
देवि, मुझे है सशय भारी !

सात्विक रघुपति रावण माया
नही जानते, क्या है छाया ।
निखिल भुवन इस अचित् शक्ति की
सृजन शीलता पर बलिहारी ।

धरा गर्भ का है गहरा तम,
जिसमे जीव रहे अविरत भ्रम,
क्षण क्षण के कटु सघर्षण से
उठी स्वर्ण की लका सारी !

मानव वही रहेगा मानव
चढा पीठ पर उसके दानव,
वही महीपति जो भुजबल की
बॉध सकेगा चारदिवारी ।

रूप गध रस शब्द कल्पना
यह ममता की नही जल्पना,
गाढ लालसा की मदिरा क्या
छोड सकेगा भूमि विहारी ?

मिट सकती जो मन की तृष्णा
होती धरा न सागर वसना,
सम्मोहन की रत्न छटा को
त्याग बनेगा कौन भिखारी ?

देवि, युद्ध से होगा निर्णय
किसका होगा धरणि का हृदय,

स्वप्न शयन माया का तजकर
बन न सकेंगे जन असिचारी।

(९)

पचवटी की स्मृति हो आई।
नील कमल मे, नील गगन मे,
नील वदन ही दिए दिखाई।

सध्या की आभा मे मोहन
पचवटी उठ आई गोपन,
झूली सन्मुख, प्रिय सँग चौदह
बरसो की स्वर्णिम परछाँई।

कौन रहा वह सोने का मृग
जिसने मोह लिए मेरे दृग ?
जगी चेतना थी केवल, मै
मन से राम न थी बन पाई !
भू सस्कार पुराने घेरे
उपचेतन मन को थे मेरे,
भू के गत जीवन की छाया
मन मे थी प्रच्छन्न समाई।

विषय मोह मिस चेतन मे जग
होना था मन से उसे बिलग,
माया मृग बन वह मरीचिका
ज्यो सोने का तन धर लाई !

... ...

जग जीवन सीता की काया,
जन मन से थी लिपटी छाया,
गत युग की लका मे उसने,
कर प्रवेश, नव ज्वाल लगाई।

ज्ञात भूमिजा को भू गाथा,
वह तापसी हरेगी बाधा,
आज हृदय स्पदन मे उसके
प्रभु ने जय दुदुभी बजाई।

(१०)

राम दूत मैं, प्रभु पद अनुचर।
पहचानो, मा, राम मुद्रिका,
सूक्ष्म परिधि सी, त्रिभुवन भीतर।

जननि, तुम्हे नित निज उर मे धर
पत्र पुष्प तृण पर करुणाकर
विरह व्यथा मिस अश्रु बहाते
मानव मन की दुर्बलता पर।

देवि, सकल ज्यों तृण तरु, खग मृग,
बने सर्वदर्शी प्रभु के दृग,
निखिल धरा मे खोज तुम्हे वे
उत्सुक तरने को भवसागर।

समवेदना तप्त जन का मन
मात, हुआ अब जाग्रत पावन,

कौन मनुज की कहे, बने सब
प्रभु पद अनुचर उपनर, वानर !

राम नाम प्रभु से भी बढकर
बना आज जन मन का ईश्वर,
अखिल सृष्टि का सार तत्व वह,
स्वर्ग मुक्ति सोपान चिर अमर !

ले सँग शूर वीर नर वानर
प्रभु आएँगे पार द्रुत उतर,
मर्यादा का सेतु बाँधकर
चिर भव तृष्णा के सागर पर !

अग्नि शिखा से करना सूचन
मुझको प्रभु का निकट आगमन,
सुन प्रभु धनु हुकार हिलेगी
स्वर्णपुरी कपित हो थर् थर् !

यह प्रभु का सँदेश जग माता,
राम भूमिजा उर के ज्ञाता,
धरती सा धीरज धर काटो
अवधि शेष यह अतिम वत्सर !

सुन मारुति के मलय से वचन
पुलको से लद गया व्रतति तन,
लहरा उठा हृदय में सागर,
वाष्प घनो से गए नयन भर !

(११)

हे पावक वाहक, धन्य, धन्य!
जग धूम केतु से शिखा पुच्छ,
तुम उल्का से टूटे अनन्य!

सद्मो सौधो से अट्टो पर
ज्यो तडित नाचती शत तन धर,
लका का ही उर दाह सुलग
अब उसे बनाता हो अरण्य!

ये दुर्ग हर्म्य जो स्वर्ण शिखर
परिताप पाप इनके भीतर,
ये भुज बल सत्ता के भूधर
है अडे धरा पर अहम्मन्य!

धर दैन्य दुरित ही स्वर्ण रूप
है बने रक्षपति कीर्ति स्तूप,
तुम भूमि कप से ज्वाल पख,
शापो की गढ लका जघन्य!

चिर अध रूढियो मे पोषित
जन गण धन मद बल से शोषित,
निज प्रजोत्कर्ष के विमुख सतत
राक्षस पति जन मन मे नगण्य!

युग युग का कर्दम कलुष जला,
गत रीति नीति के शृग गला,

अथवा लक्ष्मण के हित शंकित
देवि, अश्रु जल करती मोचित,
करुण, काल कवलित दानव गण,
देवों के हैं ईश चिर शरण!

मृत्यु दनुज के लिए मान है,
ये राघव के मुक्ति बाण हैं,
सद् विकास का, देवि, असद् भी
इस जग मे परोक्ष है कारण!

स्वाभिमान का जीवन जीवन,
चिर परिभव से श्रेष्ठ है मरण,
कल का सत्य मृषा बनता कल,
जब होते भव युग परिवर्तन!

भावी रहती नित्य तिरोहित,
हानि लाभ जीवन मरण रचित,
मेघनाद जीवन कृतार्थ अब
देख सत्य के ज्योति गति चरण!

(१४)

दु सह वन के भीतर का वन!
निखिल वन गमन के कष्टो का
ज्यो दुख सार अशोक वन गहन!

वैभव तज चिर राज भवन का
प्रभु ने पकड़ा पथ जो वन का,

नाथ जानते रहे पंथ वह
जन गृह मगल का चिर पावन !
कठिन भूमि कोमल पद गामी
वन मे थे सँग प्रिय, भव स्वामी,
ज्ञात रहा अंतर्यामी को
असि पथ वन विहरण का कारण !

वाम नियति की व्यग्य नाटिका
श्रुत अशोक वन शोक वाटिका,
विद्ध जहाँ खर शकाओ से
मधुर भाव गामी मनश्चरण !
दानव माया से न पराजित
होंगे प्रभु के अनुज ऊर्ध्वचित्,
अधोमुखी जड शक्ति पाश से
मुक्त शीघ्र होंगे जग लक्ष्मण !

दुखी ऊर्मिला के दुख से मन,
अतल अश्रु वारिधि वह जीवन !
रोते होंगे उर मे आँसू,
अधरो पर स्मित होगा आनन !

प्रकट न करते होंगे लोचन
वर्षो के चिर विरह का दहन,
लगता होगा राज भवन भी
भिक्षु कुटी सा, सूना निर्जन !

जिय बिन देह, नदी बिन वारी ,
होगी प्रिय बिन वह सुकुमारी ,
अह, कराहता होगा मर्मर
उर में मूर्त विरह अशोक वन ?

(१५)

स्वर्णपुरी यह, देवि, समर्पण !
लंकापति की मूर्ति गई गल ,
सजल हिरण्य शेष अब पावन !

भर सुवर्ण मे सौरभ महिमा
देवि, गढे रुचि सस्कृत प्रतिमा
सीता राम मयी सुर पूजित ,
मानव बने निखिल दानवगण !

दनुज जाति मर्यादा पथ पर
देवि, चलेगी बन प्रभु अनुचर ,
एक हुए अब दक्षिण उत्तर ,
धन्य आज का दिवस पुण्य पण !

पद धर पग चिह्नो पर पावन
सफल आज मदोदरि जीवन ,
अखिल धरा के शोक पाप हर
सत्य, अमर अब यह अशोक वन !

आते होगे विजयी रघुवर ,
देवि, 'बिदा लेती रज छूकर ,

फिर फिर नत मस्तक हो भू पर
प्रभु दासी मै, दास विभीषण !

(१६)

'विरह प्रलय, प्रेयसि, प्रभव मिलन !
कब बिछुडे हम और मिले कब
भूल गया मन सृजन निवर्तन !'

'फिर भी ज्योति पिड तारे गिन,
काटे मैंने विरह स्वप्न छिन,'
'सच है, प्रिये, शून्य था शशि बिन
तारा भरा अनत दिक् गगन !'

'गहन नील की प्रिये, कल्पना
क्या सभव शशि सूर्य के बिना ?
प्रकृति पुरुष मे स्वय द्विधा हो
करता ब्रह्म अभेद्य भव सृजन !'

'नाथ, मिलन क्षण आज प्रथम क्षण,'
'प्रिये, स्वयभू क्षण यह पावन !'
'राम, हमारा फिर फिर मिलना
ससृति का ज्यो नियम सनातन !'
'सच है, ज्ञात भेद तुमको पर,
विरह मिलन से हो तुम ऊपर,
जगत जननि तुम, तुमने जग हित
किया धरा पर आज अवतरण !'

(१७)

सीते, विजय मनाते जनगण !
ये आनंद अश्रु क्षण तेरे
करे ज्योति कण भू पर वर्षण !
मुक्त आज भू, मुक्त निखिल जन,
दानव मुक्त, मुक्त भव जन मन,
देवि, तुम्ही वह मुक्ति रूप, यह
मुक्ति प्रतीति बने, नव बधन !

सूर्य प्रभव रघुवश पुरातन,
अश उसी का एक हुताशन,
ऊर्ध्व प्राण आकाक्षाओ का
जो अनत अक्षय चिर कारण !

लोक कामना का वह पावक
धधक रहा अनादि से धक धक,
देवि, प्रवेश करो तुम उसमे,
यह चेतना परीक्षा का क्षण !

'क्षिति जल अग्नि पवन नभ से पर
जो ध्रुव राम अमर चिर अक्षर,
मै प्रविष्ट जीवन पावक मे,
असंदिग्ध चिर हो भव जन मन !'

'धन्य देवि, सीते, सखि, प्यारी !'
'धन्य जग जननि, जनक दुलारी !

ज्वालो वसने, आभा दशने,
धरो धरा पर ज्योति श्री चरण ।'

(१८)

'प्रभु, क्यो ली यह अग्नि परीक्षा ?
सत्यसिन्धु, सशय के तम से
करे विभीषण की निज रक्षा ।

'सृजन वह्नि यदि ईश तेज कण
तब क्या नही स्वय वह पावन ?
जलज जीव, प्रभु, सहज तरल जो
उसको कठिन अनल की दीक्षा !

'साक्षी राम बिना क्या सीता
नही दिव्य, जग जननि पुनीता ?
ईशावास्यमिद न सर्व शुचि ?
गुह्य ज्ञान की दे प्रभु भिक्षा ।'

'विश्व चेतना मे प्रकाश तम,
परम चेतना मे न द्वन्द्व भ्रम,
सुनो रक्ष, लक्ष्मण का उत्तर,
ब्रह्म तत्व की गहन समीक्षा ।

'चिर अक्षर ही जीवो मे क्षर,
स्वय मुक्त वह पूर्ण परात्पर,

विश्व विवर्तन क्षर विकास की
है अनंत शाश्वती प्रतीक्षा !

'नित सत् राम, शक्ति चित् सीता,
अखिल सृष्टि आनद प्रणीता,
प्रकृति शिखा सी उठे, शक्ति चित्
उतरे, निहित जगत में शिक्षा !'

(१९)

हनुमत रज का, नाथ, निवेदन !
जय जय जगत जननि, तम नाशिनि,
जय जय राम, पतित जन पावन !

क्षमा करे, यदि पवन सुत चपल,
तात दाय यह, जीवन संबल,
जननि दयांचल से संचारित
जगत्प्राण जो, पावक वाहन !

स्वामि पादुका का कर पूजन
गिनते भरत अश्रु से अनुक्षण,
सपदि अयोध्या चले नाथ जो
भक्ति-धन्य हो भरत प्रभु मिलन !

हे घटवासी, दे हृदयासन
सतत प्रतीक्षा मे भव के जन,
राज्यारोहण करे जननि युत,
चिर महिमान्वित हो मानव मन !

रिक्त पूर्ण हो, खड हो सकल,
जीवनाब्धि हो बिन्दु बिन्दु जल,
जय जय सीता राम, जयति जय,
जय लक्ष्मण, जय भरत शत्रुहन्!